एक किशोरी फुलझड़ी-सी

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

एक किशोरी फुलझड़ी-सी

टी. पद्मनाभन

अनुवाद

एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1881-0

पहला संस्करण : 1997 *(शक 1918)*

Original Title : Prakasham Parthunna oru Penkuti *(Malyalam)*
Translation : Ek Kishoree Phuljhari-si *(Hindi)*

रु. 23.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

भूमिका	सात
यादों का झरोखा	1
त्याग की मूर्ति	12
शेखू	17
पतिदेव	27
छोटी जिंदगी और बड़ी मौत	34
कंचा	45
झड़ी मानव आत्माएं	53
और एक कोंपल कुम्हलाई	61
वे बिस्कुट जिन्हें खा नहीं सका	69
यह पेड़ नहीं फलता	76
भविष्य की ओर	82
एक किशोरी फुलझड़ी-सी	91

भूमिका

'प्रकाशं परत्तुन्ना ओरु पेणकुट्टि' मलयालम का उल्लेखनीय कहानी-संकलन है। इसके रचयिता श्री टी. पद्मनाभन सन् 1931 में कण्णूर में पैदा हुए। उन्होंने सन् 1952 में मंगलोर के गवर्नमेंट आर्ट्स कालेज से अर्थशास्त्र में स्नातक की उपाधि और सन् 1955 में मद्रास लॉ कालेज से कानून की उपाधि प्राप्त की। दस वर्ष तक कण्णूर में वकालत करने के बाद सन् 1966 में वे आलुवा की एफ. ए. सी. टी. कंपनी (अखिल भारतीय ख्याति का राष्ट्रीय रासायनिक उर्वरक कारखाना) में अफसर हो गए। सन् 1989 में उन्होंने उसी कारखाने से उपमहाप्रबंधक के पद से अवकाश ग्रहण किया। जवानी के प्रारंभ से अब तक पद्मनाभन अपने देश के सांस्कृतिक वातावरण की गतिविधियों से पूर्णत: अवगत रहे हैं, सक्रिय और संवेदनशील भी।

पद्मनाभन ने अपना साहित्य-सृजन कहानी विधा तक ही सीमित रखा है। उन्हें संदेह है कि वे लंबे उपन्यास की रचना-प्रक्रिया में अपनी सृजन-चेतना को कैसे बनाए रखेंगे? उनकी राय है कि महान कथाकार भी अपनी कहानियों की-सी सघनता और हृदयहारिता उपन्यासों में नहीं व्यक्त कर सके हैं। इसके अलावा, लेखक चाहे कितना ही महान क्यों न हो,वह एक ही विधा पर अधिकार पा सकेगा। इस दृढ़ विश्वास के विषय में पद्मनाभन शायद अनजाने ही बोर्हस की नीति को अपना रहे थे जिन्होंने अधिकतर कहानियां ही लिखी हैं।

एक सशक्त, प्रभावशाली और ध्वन्यात्मक कहानी की रचना के लिए कथावस्तु पर एकनिष्ठ ध्यान तथा कला के प्रति समर्पित भावना अत्यंत आवश्यक हैं। पद्मनाभन को यह कुशलता सहज ही प्राप्त है। फिर भी उन्होंने बड़े दायित्व-बोध से उसका उपयोग किया है। उनकी अभिव्यक्ति की प्रेरणा जब अत्यंत प्रबल व अनिवार्य रही तभी उन्होंने कहानी रची। उन्होंने कहानियों के मात्र बारह संकलन ही प्रस्तुत किए हैं, जबकि उनके समसामयिक लेखकों ने बड़ी संख्या में कहानियां लिख डाली हैं।

हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पद्मनाभन ने बड़ी संख्या में रचना नहीं की, पर वे अकालिक प्रौढ़ थे। अर्थात, अन्य लेखकों के औसत रचनाकाल के पहले ही वे प्रौढ़ लेखक हो गए। इस संग्रह की अधिकांश कहानियां उनकी महाविद्यालय की छात्र-मनोदशा की हैं, जब उनकी उम्र सिर्फ 18 या 19 वर्ष की थी। ये कहानियां प्रमुख मलयालम पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं और शीघ्र ही कुशल समीक्षकों की प्रशंसा भी पा गईं । उन दिनों मलयालम के कहानी-मंच पर सर्वश्री तकषि शिवशंकर पिल्लै, मोहम्मद बशीर, पी. केशवदेव, एस. के. पाट्टेक्काड तथा उरूब (पी. सी. कुट्टिकृष्णन) जैसे प्रमुख कथाकारों का सितारा बुलंद था। फिर भी यह युवक जिसकी मसें भीगी भी नहीं थीं—उन सशक्त

कहानीकारों की मंडली में उचित स्थान का अधिकारी हो गया। यह कैसे संभव हुआ? इसीलिए कि पद्मनाभन की कहानियों में उनकी प्रतिभा का स्फोट था।

मलयालम कहानी-वाङ्मय ने हाल ही में अपनी जन्म-शती मनाई है। मलयालम की सबसे पुरानी कहानियां उस नाम के योग्य नहीं थीं। वे कहानियों से बढ़कर संगृहीत कथाएं थीं। केरल के कहानीकार इस कहानी नाम की नयी विधा की खास बातों और विशेष संभावनाओं से सन् 1930-40 के दशक में ही पूर्णत: परिचित हो सके। उस युग में मार्क्सवादी विचारधारा पूरे केरल पर तूफान-सी छा गई थी और जनता की संवेदना को उद्वेलित कर रही थी। उसी से प्रगतिवादी साहित्य-धारा ने अपनी शक्ति अर्जित की थी। उस युग के लेखक नयी सामाजिक चेतना से प्रेरित हो रहे थे और उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के लिए सशक्त माध्यम के रूप में कहानी की क्षमता पर विश्वास किया था। उन्होंने मलयालम गद्य को आलंकारिकता और कृत्रिम संगीतमयता से मुक्त कराया तथा उसका उपयोग अंतर्भेदिनी शक्ति से सीधे कथाख्यान के लिए किया। फिर भी, उन्होंने स्वच्छंदतावाद को पूरी छुट्टी नहीं दी थी।

सामाजिक यथार्थ को कला में रूपांतरित करने के लिए स्वच्छंदतावाद की सख्त जरूरत थी। शुरू में पोनकुन्नम वर्की, तकपि् और पोट्टेक्काड सामाजिक संरचना से अपने संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की विजय पर पूरी आस्था रखते थे। मोहम्मद बशीर और उरूब वर्ग-संघर्ष से बढ़कर अस्तित्ववादी समस्याओं में अधिक रुचि रखते थे। प्रत्येक कहानीकार ने अपनी-अपनी खास शैली ईजाद की थी जिसकी नकल दूसरे मुश्किल से कर सकते थे। पूंजीवादियों के अत्याचार से श्रमजीवी वर्ग को आजाद कराने के लिए जो 'वयलार संघर्ष' हुआ वह बुरी तरह असफल रहा। इसके फलस्वरूप मार्क्सवादी जीवनदर्शन वाले अनेक लेखकों को निराशा हुई। फलत: प्रगतिशील साहित्य-आंदोलन कमजोर पड़ गया और चौथे- पांचवें दशक के मध्य में धराशायी हो चला था, और इसके पश्चात लेखकों को आलोचनात्मक यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद से अधिक प्रिय महसूस होने लगा था। लेखक यथार्थ को एक नये दृष्टिकोण से देखने को तरसते थे। वे अपनी अभिव्यक्ति एक नयी शैली में करना चाहते थे। मोहम्मद बशीर तथा उरूब इस क्षेत्र में पथप्रदर्शक साबित हुए। उन्होंने मानव-हृदय के अंतरतम से उभरती नयी संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए नये मुहावरे प्रस्तुत किए। वे सामाजिक यथार्थ से बढ़कर मानव-हृदय की संवेदना पर अधिक जोर देते थे।

भारत के अन्य राज्यों की तरह केरल के भी कहानीकार पश्चिम के कहानीकारों के प्रभाव में आए। मोपासां, ओ. हेनरी तथा चेखव मशहूर नाम थे। उनमें से प्रत्येक ने अपनी विशिष्ट शैली में कहानी वाङ्मय की श्रीवृद्धि की। ओ. हेनरी ने जिंदगी की छोटी-छोटी विडंबनाओं पर कहानियों का ढांचा खड़ा किया। मोपासां ने यौन संबंध को जीवन का प्रेरणास्रोत माना। चेखव का व्यक्तित्व मानवीय करुणा से भरा था। प्रसिद्ध मलयालम समीक्षक प्रो. एम. पी. पॉल ने एक बार कहा था कि अधिकांश मलयालम कहानियां या तो मोपासां से प्रभावित हैं या चेखव से। तकषि् शिवशंकर पिल्लै, फ्लाबेर और मोपासां

को प्यार करते थे जो जीवन के कटु यथार्थ का चित्रण सुंदर रूप में करते थे।

पोट्टेक्काड को ओ. हेनरी बड़े हर्षदायक लगे और उन्होंने जीवन की छोटी-छोटी विडंबनाओं पर कहानियां लिखीं। उस युग के मलयालम लेखक अन्य विदेशी लेखकों से भी परिचित थे। चेखव की कहानियों में एक अबूझ मोहकता है, स्पर्श की कोमलता है, एक खास सृजनात्मक शक्ति है जिन्होंने मोहम्मद बशीर और उरूब पर अपना जादू जमा लिया था। मेरा विश्वास है कि टी. पद्मनाभन ने चेखव की कहानियां बड़े ध्यान से पढ़ी हैं। अपनी एक नवीनतम रचना में उन्होंने स्टीफन क्रोचिन, ओ. हेनरी, हेनरी जेम्स, चेखव, मोपासां, जोयिस, कोपार्ड, ट्रूमान कपोट तथा बर्नार्ड मालामड़ की रचनाओं से अपने परिचित होने की बात बताई। पद्मनाभन ने इन लेखकों में किसी से प्रभावित होने से इनकार किया है। किंतु महान लेखक संवेदनशील हृदयों पर अपना प्रभाव अवश्य डालते हैं। चेखव-जैसे प्रतिभावान लेखक़ की छत्रछाया में रहना किसी के लिए शरम की बात मानने की जरूरत नहीं है। चेखव में पद्मनाभन ने अपने लिए सजातीय आत्मा के दर्शन किए होंगे। चेखव अपार स्नेही व्यक्ति थे और सारी मानवता से प्रेम करते थे। उन्होंने दुखित व पीड़ित मानव का, उसकी आशा, निराशा, दु:ख व आतंक का शब्दचित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। चेखव के चित्रों में कभी गहरे रंग नहीं रहे। वे कोई उपदेशक भी नहीं थे। उन्होंने मानव-मन की अस्पष्ट स्थिति को—जो शब्दों की अभिव्यक्ति से नहीं प्रकट हो पाती थी — एक स्थान और नाम दिया। चेखव कहानी-विधा को दिशा देनेवाले संसार के श्रेष्ठ कहानीकारों में अन्यतम थे। मलयालम में कम-से-कम दो कहानीकार इस महान कलाकार से तुलना करने योग्य हैं—वैक्कम मोहम्मद बशीर तथा टी. पद्मनाभन। दोनों की रचनाओं में उनकी शिल्प-विधि और भाषा हमेशा अभिव्यंजित संवेदना से तालमेल रखती थी।

कहानी की शिल्प-विधि के शीर्षस्थ समसामयिक लेखकों से टक्कर लेने में पद्मनाभन ने जो सफलता पाई वह बड़ी हिम्मत की बात है। वे इसमें कभी संकोची या भयभीत नहीं रहे। उन्होंने हाल ही में एक साक्षात्कार में अपनी सृजन-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है। कला के विषय में उनकी राय है कि सृजन एक बीजांकुर के रूपायन से प्रारंभ होता है। पद्मनाभन कहते हैं कि उन्होंने कथा-बीज विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किए हैं—मुख्यत: अपने और अपने मित्रों के अनुभवों से । ''ज्यों ही भाव मेरे मन में प्रवेश करता है त्यों ही मैं लिखना प्रारंभ नहीं करता। मैं उस भाव-बीज को अपने हृदय के अंतस्थल में सुरक्षित रखता हूं। वर्षों बाद कभी मैं उसे एक कहानी का रूप देता हूं।'' ये कहानियां केवल तथ्यपरक नहीं हैं। ये सपनों से रूपांतरित की जाती रही हैं। ''मैं अब भी सपने देखता हूं। जिस दिन स्वप्न देखने की यह शक्ति कमजोर होगी उस दिन मेरा साहित्य-सृजन बंद हो जाएगा। मेरा विचार है कि श्रेष्ठ कलाकृतियों के उत्स में बड़े स्वप्न रहे हैं...एक कहानी जब मेरे हृदय में अपना पूर्ण रूप धारण करती है तभी मैं उसे लिखने लगता हूं...लिखते समय मैं अपने शब्दों पर अत्यधिक ध्यान देता हूं...''

पद्मनाभन ने बताया है कि उनकी कहानियों की धुरी करुणा है। वस्तुत: चेखव की

कहानियों की तरह पद्मनाभन की कहानियां भी करुणा की कहानियां हैं। आर्नाल्ड बेनेट ने कहा था कि एक उपन्यासकार में (यह किसी भी साहित्य-विधा के लिए लागू है) ईसा मसीह की तरह व्यापक करुणा होनी चाहिए। पद्मनाभन में यह बड़ी मात्रा में है। यह सहानुभूति दलितों, शोषितों, उपेक्षितों और अत्याचारियों के लिए भी सुलभ रही है। पद्मनाभन बड़ी विनम्रता से स्वीकार करते हैं कि वे जीवन भर करुणा से द्रवित होते रहे हैं। करुणा जाति, वर्ण और सिद्धांत के अंतर से परे प्रभाव में विश्वव्यापी है, यह लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार की किसी भी परिस्थिति के मानव पर समान रूप से लागू होती है।

पद्मनाभन इंसानियत की पीठिका पर अपनी कहानियों का तानाबाना बुनते हैं। उनके मतानुसार मानव स्वतंत्र होने के लिए ही दंडित नहीं, वह मानव द्वारा अपने सहजीवी लोगों को अपने गुलाम बनाने के लिए निर्मित शोषक-संस्थाओं का शिकार होने के लिए भी अभिशप्त है। ये संस्थाएं उसके सहचरों को नष्ट-भ्रष्ट करती हैं या उनके जीवन को दीन-हीन बना देती हैं। उदाहरणार्थ 'छोटी जिंदगी और बड़ी मौत' कहानी लीजिए। उसमें मोहिउद्दीन नामक एक छोटे बालक की कहानी है। वह अपना गुजारा करने और हो सके तो गांव में उपेक्षित पड़ी मां को चार पैसे भेजने के लिए नगर पहुंचता है। नगर का एक निठुर होटल-मालिक उसका शोषण करता है। वह उसे निपट गरीबी और अत्यंत दीन दशा में नारकीय यातना झेलने के लिए विवश करता है। ऐसे बालक इस प्रकार के जीवन के भीषण अंत का अनुभव क्यों करें? इस त्रासदी के लिए उत्तरदायी कौन है? बालक का बाप, होटल-मैनेजर या सामाजिक संरचना? दिल को बेधने वाली इस कहानी में जो करुणा है वह बहादुर कुत्ते 'शेखू' की मौत की कहानी की करुणा के समांतर है। शेखू वीर कुत्ता था जो किसी अजनबी पर भीषण क्रोध से भूंकता था या निर्दयता से उसे काटने को तैयार रहता था। दुर्भाग्य से उसका मालिक उसको ठुकराता है। जो बूढ़ा उस कुत्ते की देख-रेख करता है वह उसे बुरी तरह कष्ट देता है। शेखू नजरबंदी-शिविर के कैदी की तरह ही मर जाता है। पद्मनाभन का शेखू कोई मामूली कुत्ता नहीं, वह हमारे ही समाज का सदस्य है जो हमारी सलीब कंधे पर ढोता है, हमारी मौत मरता है।

'झड़ी मानव आत्माएं' नामक कहानी में हम तंकम्मा का परिचय पाते हैं। तंकम्मा वृत्ति से वेश्या है, पर उसका दिल सोने का है। उसने उसकी (तंकम्मा की) कथा सुनने वाले युवक की मदद की थी, पर वह उसके बदले में कुछ कर नहीं सका। वह उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करने को तैयार था। पर तब तक वह उससे बहुत दूर चली गई। हमें पता नहीं चलता कि वह जिंदा है या मर गई। तंकम्मा की इंसानियत कहानी की धुरी है। 'यादों का झरोखा' का ईप्पन तथा 'और एक कोंपल कुम्हलाई' का जनार्दनन और 'झड़ी मानव आत्माएं' की तंकम्मा फरिश्ते हैं जो अपना सब कुछ औरों को दे देते हैं और बदले में कुछ नहीं मांगते। उनसे भी बड़े फरिश्ते हैं हेलन, उसकी बहन और उनके मां-बाप। वे अपने जीवन को भगवान के प्रति अपना कर्तव्यभार मानते हैं जो प्रेम की वेदी पर चढ़ाने

के लिए ही बना है।

'पतिदेव' व्यंग्यात्मक कहानी है। इसमें लेखक ने दिखलाया है कि स्त्री भी पुरुष के समान हुक्म कर सकती है। अम्बुजम अपने आदमियों को खूब नचाती है—जो उसके इशारे के गुलाम हैं। 'कंचा' एक बालक की कहानी है और बड़ी निपुणता से रची गई है। बालक के लिए खिलौना या खेलने के साधन सबसे महत्वपूर्ण हैं। वह स्कूल की फीस से भी अधिक महत्व उसे देता है। पद्मनाभन अपने बचपन तथा बच्चों को बहुत चाहते हैं। यह 'छोटी जिंदगी और बड़ी मौत' तथा 'कंचा' में दिखलाया गया है। 'वह पेड़ नहीं फलता' बालक की ही कहानी है, पर उसमें राजनीतिक पृष्ठभूमि भी महत्व की है। हमें याद रखना है कि एक साहब ने गरीब बालक को निष्ठुरता से मारा है। वह अपने पुत्र और अपने बटलर (खानसामा) के पुत्र की घनिष्ठता का महत्व पहचान नहीं सका है।

बचपन जाति, वर्ण या धर्म का अंतर नहीं पहचानता। कलाकार ने इस कहानी में प्रशंसनीय कलात्मक ढंग से भयानक वातावरण का सृजन किया है। 'यादों का झरोखा' शीर्षक कहानी में स्वाधीनता के लिए केरलीयों का संघर्ष प्रतिध्वनित हो रहा है। 'एक और कोंपल कुम्हलाई है' कहानी की कथावस्तु में धार्मिक समन्वय की समसामयिक चेतना है। 'वे बिस्कुट जिन्हें खा नहीं सका' शीर्षक कहानी में छुआछूत की विडंबना बड़ी कुशलता से अभिव्यंजित है। 'भविष्य की ओर' कहानी में देश-विभाजन की गहरी त्रासदी ध्वनित हुई है। यही थीम पद्मनाभन की ही अन्य कहानी 'माखनसिंह की मौत' में भी व्यंजित है। वह कहानी इस संकलन में नहीं है। मानवता की करुण रागिनी पद्मनाभन की आंखों को गीला कर देती है। उस संगीत की निपुण अभिव्यक्ति पाठकों के दिल के तारों को भी कंपित करती है। उनके हृदय में भी करुणा का सरगम ध्वनित होता है।

फिर भी पद्मनाभन निराशावादी नहीं हैं। हेलन, तंकम्मा, जनार्दनन और माखनसिंह अपनी मानवता और निस्वार्थ त्याग से बुराई पर विजय पाते हैं।

फुलझड़ी-सी किशोरी दुखित या पीड़ित नहीं है। वह जीवन और प्रेम की सदा बहार स्फूर्ति की पूर्ण मूर्ति है। कोई बुराई उसे हरा नहीं सकती। प्रसन्नता से लबालब भरी इस कहानी में बालिका का मंदहास युवक के हृदय से आत्महत्या का विचार दूर कर देता है। 'पावम मानव-हृदयम' (बेचारा मानव हृदय) नामक कविता में श्रीमती सुगतकुमारी ने इसी भाव को अपनाया है। उसकी निम्नलिखित पंक्तियों में यही भावना गूंजती है—

''बेचारी मानव-चेतना नक्षत्र को देखकर अंधेरे को भूल जाती है। वर्षा को देखकर सूखा विस्मृत कर देती है। दुधमुंहे बच्चे की मीठी मुस्कुराहट देख मौत को भुला देती है।''

फुलझड़ी-सी बालिका अंधकार और मृत्यु पर विजय पाती चेतना की प्रतीक है।

पद्मनाभन की कहानियां पीड़ित और शोपित सहजीवियों के लिए मानव की सहानुभूति के पर्यायवाची शब्द हैं। पद्मनाभन किसी तरह की क्रांति का आह्वान नहीं करते। न वे दलितों की स्वतंत्रता का नारा लगाते हैं। किंतु वे कलात्मक ढंग से मानव की त्रासदी से पाठकों को अवगत कराते हैं। वे शब्दों के प्रयोग में किफायत से काम लेते हैं। प्रत्येक

शब्द सशक्त होता है और किसी गहरी मानवीय संवेदना को मुखरित करता है। पद्मनाभन अनायास अपने को अपनी कहानी का एक पात्र बना लेते हैं। और कहानी के मध्य से किसी अंतरंग अनुभव की कोई कहानी नि:सृत होती है। जब पाठक कहानी की संवेदना में स्वयं डूब जाता है तब वह कहानी के शब्द-गठन के विषय में ध्यान बिल्कुल नहीं देता। यह गठन पारदर्शी माध्यम का काम देता है। पृष्ठभूमि, पात्र, संवाद और आवेग-सभी सम्मिलित होकर एक हृदयहारी अनुभव कराते हैं। प्रत्येक कहानी में एक प्रभु प्रकाश का क्षण आता है जब पाठक वस्तुओं के चैतन्य के भीतर दृष्टिपात कर लेता है। लेखक जान-बूझकर ऐसे क्षणों का आविष्कार नहीं करता। लेखक को सही क्षण में ये सूझते हैं। ऐसा अनुभव कहानीकारों को ही हो सकता है।

साठ और सत्तर के दशकों में मलयालम कहानी अस्तित्ववादी और नवीनतावादी हो गई। कहानी उरूब, एम. टी. वासुदेवन नायर और पद्मनाभन से काक्कनाडन, मुकुन्दन और ओ. वी. विजयन के नये युग में आ गई है। किंतु किसी महान लेखक को दूसरा लेखक नष्ट नहीं कर सकता। चेखव विश्व साहित्य में अब भी हैं। कोई उन्हें चुनौती नहीं दे सका और न नष्ट ही कर सका। उसी तरह बशीर, उरूब और पद्मनाभन अपनी पूरी आभा छिटकाते हुए हमारे साथ अभी भी हैं। पद्मनाभन की वैभवशाली कला हमारी सौंदर्य-चेतना को धनी बनाती है। उसकी करुणा हमारे मन को उदात्त व विशाल बनाती है तथा हमें अधिक मानवीय बना देती है। उनकी रचनाएं आधुनिक क्लासिक कही जा सकती हैं।

—प्रो. के. एम. तरकन

यादों का झरोखा
लंबे-लंबे नौ साल

इस दौरान कितनी ही घटनाएं घट चुकी हैं। जिंदगी अनेक दिशाओं में बही जा रही है। बहाव की तेजी अब जरूर कम हुई है। फिर भी पानी का मटमैलापन अभी भी शेष है। देखा बहुत कुछ, थोड़ा बहुत भुगत भी लिया है। बीते दिनों की याद आती है तो बरसाती बादलों से भरे आसमान की तरह मेरा दिल भी भर आता है। दिनानुदिन मेरा मिजाज शक्की होता जा रहा है। यही हाल आगे भी कहीं जारी न रहे, यह आशंका मुझे सता रही है।

गोधूलि वेला में इस पुराने घर के बरामदे में बैठे-बैठे मेरे मन का घोड़ा बेलगाम न जाने कहां-कहां की सैर किया करता है। यह पूरा मुल्क मेरा है। फिर भी मेरा अपना निजी कहलाने को कुछ भी नहीं। मुझे उम्मीद थी कि ये कठिनाइयां खुद-ब-खुद समाप्त हो जाएंगी। कई मामलों में उम्मीद सही भी निकली। ऐसी ही धुन में पड़े-पड़े जब भी निराश होता हूं तब मेरी परेशानी और विकट हो उठती है। मगर ऐसी घड़ी में कहीं से ईप्पन भाई की याद मन में उभर आती है और प्यार तथा सेवा के स्वच्छ शीतल जल के छींटे मन पर पड़ने लगते हैं।

ईप्पन मेरे लिए आशा की बुझती हुई अंतिम किरण के समान था। मैंने और किसी में इतनी इंसानियत तथा बड़प्पन नहीं देखा था।

हाल ही में मुझे परवूर तक जाने की जरूरत आ पड़ी। याद आया, ईप्पन ने अपने घर का जो पता दिया था वह स्थान आलुवा के आसपास ही था। मुझे आलुवा से होकर ही जाना था, तब क्यों न उससे मुलाकात कर ली जाए? यह सोचकर मैंने पुरानी डायरी से ईप्पन का पता नोट किया।

इस मुलाकात के पीछे मेरा एक खास मलतब भी था। मैंने ईप्पन से एक झूठ कहा था। बाद में महसूस किया कि ऐसा नहीं कहना चाहिए था। लेकिन उस दिन मैं लाचार था। उन दिनों खादी पहनने भर की वजह से पुलिस लोगों को गिरफ्तार कर हवालात में बंद कर देती थी। ऐसे मौके भी कम नहीं थे जब कि खून के रिश्तेवाले भी अपनी खैरियत के लिए एक- दूसरे की मुखबिरी करते थे। इस तरह के माहौल में मैं एक अजनबी पर कैसे भरोसा करता?

मैंने अपना एक कल्पित नाम बताया। यह बिल्कुल मामूली झूठ था। फिर भी उसकी याद इतने लंबे अरसे से मेरे मन को कचोटती रही है।

मेरे दिल की उदासी अब दुगुनी हो चली है। ईप्पन दुनिया से विदा हो चुका है। अब मैं अपने अपराध करने का पाप स्वीकार तक नहीं कर पाऊंगा!

जब गांव की सड़क पर मैं ईप्पन का घर ढूढ़ंता चला जा रहा था तो कितने ही ख्याल

मुझे परेशान कर रहे थे। कहीं ईप्पन मुझे न पहचाने तो? ईप्पन से मेरा संपर्क कुछ घंटों का ही था। आखिर इसका भी क्या दावा है कि वह घर पर मिलेगा ही? हो सकता है, वह देविकुलम या पुनलूर के बागान की देख-रेख में व्यस्त हो।

मैंने एक चाय की दुकान पर पता किया तो वहां बैठे लोग ईप्पन के बारे में कुछ बता नहीं सके। उनमें से किसी ने कहा, "यहां कितने ही ईप्पन हो सकते हैं", तब मैंने ईप्पन के बारे में उन्हें बताया :

"करीब नौ साल पहले वह तृश्शूर में अध्ययन करता था।"

एक अधेड़ देहाती व्यक्ति ने यह सुनकर प्रश्न किया —"कहीं पुलिक्काड के वरीद भैया का बेटा तो नहीं... ?"

मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था। ईप्पन के परिवार का नाम वही था। मैं भूल गया था।

"जी हां, वही। क्या वह आजकल यहां है?"

मेरा सवाल सुनकर वह सकपकाया और खामोश ही रहा।

"क्या वह यहां नहीं है?" मेरे सब्र का बांध टूट रहा था।

"उसे मरे चार साल हो चुके। खबर अखबारों में आई थी।"

मैं चौंक उठा। ईप्पन मर गया? ... मुझे यकीन नहीं हो रहा था। ईप्पन जैसे लोग क्यों दुनिया छोड़ जाते हैं?

ईप्पन धरती का नमक था। ऐसे ही लोगों को जिंदा रहना चाहिए।

सुना कि मौत सहज नहीं थी। ईप्पन की मौत जेल में हुई थी। वरीद भैया अपने प्यारे बेटे को आखिरी क्षणों में देख तक नहीं सके।

मैं लौट आया। मेरी आंखें गीली थीं। हाय! मैं ईप्पन को पहचान नहीं सका था। तभी तो झूठा नाम कहना पड़ा। ईप्पन ने शायद मुझे पहचाना होगा। वह बाद में इस पर हंस पड़ा होगा। ईप्पन कायर नहीं था।

उस दिन की हर घटना मन में साफ-साफ उभर रही है। सब कुछ कल ही घटित-सा लगता है।

मैं उस दिन सांझ को तृश्शूर पहुंचा था। उस शहर को पहली बार जा रहा था। किसी से जान-पहचान नहीं थी। जिससे मिलना था उससे भी मैं पहले से परिचित नहीं था।

मालाबार में कई वारदातें हो रही थीं। तार काटना और स्टेशन पर आग लगाना दैनिक कार्यक्रम-सा हो गया था। इंकलाबी जवान अपने समय की हुकूमत को अस्त-व्यस्त करने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे। कफन सिर पर बांधे हुए ऐसे जवानों के कई दल थे। मैं भी एक ऐसे ही दल का सदस्य था।

भूमिगत रहते हुए आंदोलन चलाने के लिए पैसे की और दूसरी मदद की जरूरत पड़ती थी। हम लोग कुछ चुने हुए अमीरों की तिजोरी और पहुंच पर निर्भर करते थे। वे स्वाधीनता आंदोलन से प्रेम रखते थे। हम लोगों को सरकार की आंखों में धूल झोंकने में उनकी

सहायता प्राप्त होती थी। अपने दल के लोगों ने मुझे ऐसे ही एक धनी सज्जन से मिलने तृश्शूर भेजा था। उस सज्जन ने पहले भी हमें मदद पहुंचाई थी।

चादर से पूरे सिर को ढके हुए मैं प्लेटफार्म से आगे निकला। मुझे मालूम नहीं था कि किस दिशा में चलना है? किससे पूछा जाए? मैं झिझककर खड़ा रहा। कुली और रिक्शे- वाले मुझे अब तक घेर चुके थे।

मेरे हाथ में चमड़े की छोटी-सी अटैची थी। उसे उठाने के लिए किसी कुली की जरूरत नहीं थी। मैं रिक्शे में दूसरों की नजर बचाकर उस सज्जन के घर पहुंच सकता था। मगर मेरे पास पैसे नहीं थे। इसलिए मैं रिक्शेवालों की मदद को ठुकराने पर मजबूर हुआ।

अटैची बदन से सटाए मैं उतावली से चल पड़ा। मन में यही दिलासा बांधे कि कोई आसानी से मिल जाए तो उनके विषय में पूछ-ताछ कर लेंगे, जिनसे काम है। कुली छोकरे मेरे पीछे लगे थे। मैं कुछ क्रुद्ध हो उठा। कानी उंगली से उठाने लायक अटैची ले चलने के लिए और कोई क्यों? जब उन्हें पता लगा कि इस आदमी के पास दाल नहीं गलेगी तब वे एक-एक करके खिसक गए। सिर्फ एक लड़का मेरे पीछे-पीछे आ रहा था।

''बाबू, वह अटैची दीजिए न! मैं ले चलूंगा, आप कुछ भी न दें।'' कहते हुए उसने मेरी अटैची हाथ में ले ली।

मैं गुस्से से कांप उठा। इस छोकरे की यह हिमाकत! अटैची में गैर-कानूनी घोषित की हुई किताबें, दस्तावेज वगैरह थे। अगर किसी की नजर पड़ जाए तो? मेरी ही बात नहीं और भी लोग इनसे जुड़े थे।

सोचा, लड़के को एक थप्पड़ रसीद करूं। किंतु लड़का चिल्ला उठे तो नयी आफत टूट पड़ेगी। इसलिए सिर्फ घूरकर डराया।

किंतु उस लड़के पर नजर डाली तो मेरा गुस्सा काफूर हो गया। वह बालक चुहिया-सा थर-थर कांप रहा थ। वह दीनता की पुतली था। फटी-पुरानी कमीज के भीतर से उसका पीला बदन मुझे अच्छी तरह दिख रहा था। उभरी हड्डियों की उसकी छाती पर एक सलीब टंगी थी जो उसे शायद बोझ लगती होगी।

उसकी आंखों में आशा की रोशनी चमकी। वह प्रार्थना थी।

मैंने उससे पूछा—''तेरा नाम क्या है?''

हो सकता है, उसकी जिंदगी में पहली बार किसी ने ऐसी पूछ-ताछ की हो। मैंने उन आंखों को आश्चर्य से खिलते देखा।

''अन्तोणी!''

उसने कुछ झिझकते हुए कहा— ''अन्तोणी ! तू देखता है न , क्या यह अटैची ढोने के लिए किसी की जरूरत है?''

''बाबू , आप जो चाहें, दे देना। रात को चाय पीने के लिए कुछ नहीं है। आप जहां कहें, पहुंचा आऊंगा।''

और कोई मौका होता तो मैं खतरनाक बक्सा लिए बातचीत करते हुए न रुकता। लेकिन

उस बालक की दीनता देख मेरा दिल पिघल गया। मैंने जेब से दो पैसे निकालकर उसे दिए और कहा —"अन्तोणी, जाओ और चाय पी लो।"

वह गया नहीं, कह रहा था—"एक गिलास चाय के लिए एक आना देना पड़ेगा।"

बात मुझे नहीं अखरी। जो भी हो, वह भीख नहीं मांग रहा था। मैंने जेब टटोलकर देखा तो दो पैसे हाथ लगे। उसे दे दिए। दो पैसे से मेरा कोई काम नहीं चलना था, पर वह तो एक रात की भूख से बच सकता था।

अन्तोणी ने मेरा भी काम कर दिया। मुझे जिनसे मिलना था उनका दफ्तर उसे मालूम था। वह मेरे साथ चल पड़ा। पूरा शहर त्योहार के लिए सज-धजकर खड़ा था। जहां देखो वहीं रोशनी! रंगीन बिजली की बत्तियां और मोमबत्तियां हिलमिलकर जगमगा रही थीं। रह-रहकर 'कतिना'। पटाखे के धमाके सुन पड़ते थे। परंतु मुझे त्योहार का मजा लेने की फुरसत नहीं थी। मेरी यात्रा का ध्येय कुछ और था।

अन्तोणी ने एक बड़े बंगले की ओर इशारा किया। वह एक कारखाने का दफ्तर था। अन्तोणी को विदा करने के बाद मैं वहां पहुंचा। संयोग से वे सज्जन वहां मौजूद थे।

मुझे बाहर थोड़ी देर इंतजार करना पड़ा। वहां की सज-धज और वैभव देख मैं चकित हो उठा। फर्श पर बिछी कीमती दरी पर पैर रखते मन झिझक उठा। मुझे अहसास हो रहा था कि इस माहौल से कभी अपना समझौता कर नहीं पाऊंगा।

मुझे मुलाकात की अनुमति मिली। जब मैं कमरे के भीतर गया तब वे कागजों पर आंखें गड़ाए हुए थे। गेंहुआ रंग, गदराया गोल मुखड़ा—उस पर सोने के फ्रेम का चश्मा खूब फब रहा था। उन्होंने कागज दूर रखकर कुछ पूछने की मुद्रा में मेरी तरफ देखा। मैंने लाया हुआ पत्र मेज पर रखा और दूर खड़ा रहा।

उन्होंने मुझे बैठने तक को नहीं कहा। सोफे में बैठने की लियाकत मुझमें नहीं थी। उन्होंने भी यह समझ लिया होगा।

दीवार पर युद्ध-प्रचार के चित्र टंगे थे। उन्हें देख मैं आश्चर्य में पड़ गया। जहां तक मेरी जानकारी थी, वे पूरे राष्ट्रवादी थे।

उनकी भौंहों पर पड़ता बल मुझसे छिपा नहीं। मैंने देखा—उस चेहरे पर नाराजगी झलक रही थी। दीवार पर टंगी घड़ी के पेंडुलम की तरह मेरा दिल भी झूल रहा था। बड़ी व्यग्रता के क्षण थे।

आंखों पर लगा चश्मा नीचे उतारकर वे रूखी आवाज में बोले—"मैं कोई मदद नहीं कर सकता।"

तब तक सुरक्षित रखा हुआ आशा का गुब्बारा फट पड़ा।

मुझे बहुत कुछ कह डालने की इच्छा तो हुई पर शब्द बाहर नहीं निकल रहे थे।

---

1. केरल के मंदिर और गिरजे के मेलों में काम आता है। लोहे की गिलासनुमा नली में देशी बारूद भरकर उसके खुले निचले छेद में मशाल से आग लगा देते हैं तब जोर का धमाका होता है।

लाचार मैं चुपचाप खड़ा देखता रहा। निराशा मन को मसोस रही थी।

"तुम जा सकते हो।"

स्वाभिमान ने मुझे उस आदमी के सामने गिड़गिड़ाने से रोका। चिट्ठी वापस लेकर मैं चुपचाप लौट चला। दरवाजे पर पहुंचा तो उन्होंने फिर से आवाज देकर कहा—"तुम आगे यहां मत आना। तुम्हारे नाम वारंट निकला है।"

पता नहीं, मेरे नाम वारंट था या नहीं। पर इतना तो मैं जानता था कि मेरा नाम पुलिस की सूची में है। जो भी हो, उनकी ताकीद स्पष्ट धमकी थी। आगे मुझे उन्हें तंग नहीं करना चाहिए।

यह सोचते हुए मैं सड़क पर आ गया। मैंने महसूस किया कि चलने की मेरी ताकत जवाब दे चुकी है। उस घड़ी तक मेरा पूरा मन उस काम की पूरी सफलता पर केंद्रित था जिसका बीड़ा मैंने उठाया था। मैं न भूख जानता था, न प्यास। मुझे अपने मैले बदन और गंधाती कमीज का भी ख्याल नहीं था।

मैं तलश्शेरी से चला था। रास्ते में चेमंचेरी और फेरोक स्टेशनों पर उतरा। न नहाने की फुरसत थी न सोने की। बिल्कुल आराम किए बिना तृश्शूर पहुंचा। यहां आने पर मन को समझाया कि किसी झंझट के बिना पहुंच तो गया, अब अपना काम पूरा करूं तो लौटूंगा। मगर यहां का अनुभव तो ! ...

दीवार पर युद्ध-प्रचार के चित्र टांगानेवाले उस सज्जन ने खादी पहन रखी थी। वह दोनों तरफ के लोगों से कमाना चाहता होगा। उससे और उसके पास मुझे भेजनेवाले लोगों से नफरत हुई। उस समय की मेरी हालत नफरत को बढ़ाने में ही सहायक हुई।

निराश मैं बिना किसी खास ध्येय के आगे चल पड़ा। हल्की अटैची तक भारी लग रही थी। ऊपर से कुछ-कुछ डर भी महसूस हो रहा था।

क्या भरोसा कि वे सज्जन पुलिस को खबर न करें? वे उससे भी अधिक करने के काबिल हैं। अटैची के साथ मैं पकड़ा जाऊं तो? ... इस भय ने मेरी थकान को दुगुना कर दिया।

अनजाने मेरा हाथ जेब की तरफ बढ़ा। उसमें इकन्नी होनी चाहिए। सिर्फ एक आना। फिर भी भूख कुछ तो शांत होगी।

मेरी उंगलियों ने पूरी जेब टटोली। पर जेब खाली थी।

तभी मुझे अन्तोणी की याद आई। उस दीन दशा में भी मुझे राहत महसूस हुई। इकन्नी से उस बालक का बड़ा लाभ हुआ होगा। मैंने कल्पना में देखा कि अन्तोणी बड़ी बेसब्री से चाय पी रहा है।

सड़क से लोगों की भारी भीड़ गुजर रही थी। एक जुलूस था जिसमें चौंधियाती गैस-लाइट और बैंड-बाजे थे। स्त्रियां, बालक और पुरुष थे। चांदी की मूठ और सोने की झालरवाले बड़े-बड़े रेशम के छाते रोशनी में जगमगा रहे थे। पवित्र माता मरियम के चित्र से अंकित छोटे झंडे हवा में झूल रहे थे। चंदोवे के नीचे रेशमी जूते, सोने की सलीब और

रेशमी टोपी धारण किए फादर लोग भक्ति-भाव से चल रहे थे। वे कुछ मंत्र भी जप रहे थे। सड़क की दोनों तरफ के घर सजे थे। बरामदे पर छोटे लड़कों की भीड़ थी। वे महताब जलाते, पटाखे दागते त्योहार मना रहे थे।

मैं किनारे फुटपाथ पर खड़ा रहा और भीड़ को सावधानी से निरखने लगा। एक नया, अनोखा नजारा था। गरीबी या अकाल का कोई निशान नहीं। मुझे लगा कि सोने की सलीब और चांदी की झालर के संसार में गरीबी नहीं हो सकती।

किंतु वह भ्रम था। दूसरे क्षण मुझे अन्तोणी की याद आई जिसकी छाती पर सीसे की सलीब थी।

मैं भी गिरजे में पहुंचा। पूरा वातावरण अलौकिक कांति में जगमगा रहा था। परंतु वहां शांति बिल्कुल नहीं थी। झूलेवाले और फेरीवाले अपने शोर से पूरे माहौल को गुंजा रहे थे। गिरजे के अहाते में अधिकांश स्त्रियां थीं। उनमें कब्र में पांव लटकाए दादियों की अपेक्षा उन स्त्रियों की तादाद अधिक थी जो जवानी को बनाए रखने की पूरी चेष्टा कर रही थीं। उनके पान से लाल होंठ और काजल से सजी प्यारी आंखें किसी को भी बरबस खींच लेतीं। अधिकतर स्त्रियां झकझक जरीदार कपड़ों से अपने को ढके हुए थीं। एकदम महीन और मकड़ी का जाला-सा रूमाल सिर पर धारण किए वे सुंदर रमणियां अगर चांदनी रात में एकांत में दिख पड़ें तो अचानक स्वर्ग से उतरी परी लगेंगी।

उस बड़े हॉल में जहां-तहां चटाइयों पर स्त्रियां हिलमिलकर बैठी बातचीत कर रही थीं। उनके बीच छैले लोग, मानो किसी की पुकार पर, बड़ी उतावली से चहलकदमी कर रहे थे।

मैं हॉल में नहीं घुसा। अधिक लोग बाहरी मंडप में थे। वहां फूलों और अन्य सुगंधित वस्तुओं की महक उठ रही थी। वहां एक संत पादरी का मजार था। मैंने कुतूहल से मजार पर खुदा हुआ वाक्य पढ़ा —"वह नहीं सोता, वह मध्यस्थ का कार्य करता है।" बाइबिल का वह वाक्य! उस पर मैंने कई बार सोचा है। उसका मतलब क्या हो सकता है?... कितने लोगों ने इस वाक्य का भाव समझा होगा?...

मैं वहां अधिक देर तक नहीं रुका। बाहर निकला। राजपथ छोड़कर कम रोशनीवाली गली में पहुंचा।

उस चौराहे पर ईख के ढेर लगे थे। उनके पीछे गलियों की संतानों का वार्तालाप जारी था। उन लड़कों के दांत ईख के कड़े छिलकों से जूझ रहे थे। एक लड़के ने कहा—"अरे! तेरे गिरजे का यह मेला हमारे मंदिर के 'पूरम' मेले से बाजी नहीं ले सकता।"

दूसरा इससे सहमत नहीं था।

"वाह! पूरम का मेला! डींग क्यों मारते हो? मैंने भी पूरम का मेला देखा है।"

"तुमने क्या आराट्टुपुषा गांव का पूरम मेला देखा है?"

वे बहस में व्यस्त थे और एक लड़के ने जमीन से कोयले का टुकड़ा उठाया और दीवार पर लिखा—'इंकलाब जिन्दाबाद।'

वह घिसे हुए अक्षरों पर दुबारा लिख रहा था। उम्र में वह साथियों से छोटा था। शायद इसीलिए वह त्योहारों, मेलों की बहस में भाग नहीं ले रहा था।

उस दृश्य ने मेरे मन में एक नयी स्फूर्ति जगा दी। उस बालक ने शायद जान-बूझकर ऐसा लिखा होगा। फिर भी उसने लिखा... उस पर उसका देश गर्व कर सकता है।

उधेड़बुन में उलझा मैं बस-स्टैंड पहुंचा।

मुझे बिल्कुल अंदाज नहीं रहा कि किधर जाना है और क्या करना है? मगर यह पहला मौका नहीं था कि पहेली में फंसा होऊं। मैं इसी सोच-विचार में डूब-उतरा रहा था कि किसी ने पीछे से मेरे कंधे पर हाथ रखा।

पीछे मुड़कर देखा—वह पुराना दोस्त पिपारडी था।

मेरे दिल को तसल्ली हुई। गहरे सागर में डूबनेवाले को नाव मिलने की-सी खुशी हुई। अपनी भूख, प्यास और थकावट मैं भूल गया।

मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया कि उसने इस मित्र को मेरे पास भेजा। मगर वह शैतान का हरकारा था। बाद में ही मुझे पता लगा।

पिपारडी उग्रपंथी बोलशेविक था। हमें मिले दो-तीन साल बीत गए थे। मुझे पता नहीं था कि वह बंबई से गांव लौट आया है।

मैंने अपने आने की योजना बताना शुरू किया तो वह बोला—"यह जगह ठीक नहीं। हम और कहीं चलकर बैठे-बैठे बात करेंगे। बहुत कुछ कहना है।"

हम लोग एक नायर मिलिटरी होटल पहुंचे जहां ग्राहक बिल्कुल कम थे। भूख से मुक्ति पाकर मैंने उसे मालाबार के अपने सारे कार्यक्रम व भविष्य की योजनाएं बता दीं। वह सब बातें चुपचाप सुनता रहा। आखिर मैंने उससे पूछा—"तुमने बंबई से लौटकर क्या-क्या किया?"

उसने बताया कि सिर्फ एक सप्ताह पहले ही वह बंबई से गांव लौटा है। उसने अपना कार्यक्षेत्र बंबई से केरल बदल दिया है। आने के बाद उसने केरल में जवानों का एक दल तैयार किया है। उस दल ने योजना बनाई है कि कुछ दिनों में एक पुलिस आउट-पोस्ट पर धावा बोलना होगा।

मैं पुलकित हो उठा। मेरा मुल्क आजाद होने जा रहा है।

पिपारडी ने एक अखबार लपेटकर मेज पर रखा था। मैंने यों ही उसे खोलकर देखा। लिखा था—

'यह युद्ध जनवादी है।'

उसका शीर्षक पढ़कर मैंने पिपारडी की तरफ सवालिया निगाह से देखा। वह ऐसा अखबार क्यों लेकर चलता है? मगर उसने कहा— "अरे, पैसा देकर नहीं खरीदा, मुफ्त में मिला है। फेंक क्यों दें, उनका तर्क भी तो सुनें।" कहकर वह हंस पड़ा। मुझे भी उसका कथन सही लगा।

मैंने अपने हाथ की पुस्तिकाएं व नोटिस उसे सौंप दीं। तब उसे एक नयी बात सूझी।

उसका साथी पास ही रहता है। उसे भी बुला लाया जाए। फिर तीनों मिलकर दोस्त के घर पर बातों की विशद चर्चा करें तो कैसा रहे? मैं राजी हो गया तो मुझे वहीं बिठाकर वह बाहर चला गया।

पिषारडी के लौटने में विलंब हो रहा था। मैं कुछ घबराया। कहीं उसने मुझे धोखा तो नहीं दिया? होटल का मालिक क्या सोचेगा? वहां कोई नहीं था। इसलिए उसने गौर नहीं किया। लोगों के आने पर वह मुझे यहां जगह घेरने नहीं देगा।

मैं उठा और बाहर जाकर देखा। दूर से कोई दो शख्स आ रहे थे। पिषारडी व उसका साथी हो सकते हैं। हां, वे होटल के नजदीक पहुंचे तो एक बिजली के खंभे के नीचे खड़े हो गए। पिषारडी धीमी आवाज में कुछ कह रहा था। उसके साथी का चेहरा मुझे साफ नजर आ रहा था। महसूस अुआ कि यह चेहरा कहीं देखा हुआ है। मैंने खूब सोचा।

बाजार में हैद्रोस ने इसी शख्स को दिखाया था। वह मेरे जैसे लोगों का शिकार करनेवाला खुफिया पुलिस का सिपाही था!

गुस्से और रंज से मैं चकित हो उठा। सोचने-विचारने की फुरसत नहीं थी। मैं मुंह धोने के बहाने पिछवाड़े गया और कूदकर दीवार फांद ली। मेरी किस्मत से सड़क वीरान थी।

पता नहीं, उस रात को मैं किन-किन रास्तों से गुजरा। कंक्रीट स्लैबवाली सड़क पर और बाजार में मैं बेतहाशा दौड़ा। और कोई प्रसंग होता तो शायद ही ऐसा व्यवहार करता। मुझे ताज्जुब होता है कि मैं कैसे पुलिस के जाल में फंसने से बच गया।

आज घटना की याद आती है तो पिषारडी पर मन में जरा भी नफरत नहीं उठती। उसने मुझे पकड़वाने की कोशिश अवश्य की थी। ऐसे खतरों का सामना कई लोगों को करना पड़ा है। परंतु इस देश के इतिहास में ऐसे विश्वासघातकों की लंबी सूची भी है न!

मैं किसी तरह स्टेशन लौटना चाहता था। मगर तब तक बारिश शुरू हो चुकी थी। आरंभ में बूंदा-बांदी हुई, पर शीघ्र ही मूसलाधार वर्षा होने लगी।

मैं सड़क के किनारे एक दुकान के बरामदे पर चढ़ गया।

कठिनाइयां कभी मेरे जोश को ठंडा नहीं कर सकी थीं। पर, वह भीषण विश्वासघात! उसकी बात सोचकर मैं रो पड़ा। आदमी क्या नहीं कर सकता?

कोई टार्च जलाता उधर से आ रहा था। दुकान के पास पहुंचा तो उसकी नजर मुझ पर पड़ी। थोड़ी देर झिझकते रहने के बाद वह बोला—"अगर इसी दिशा में चलना हो तो मेरे छाते में आ जाइए।"

मैं चुप रहा।

मेरा इरादा था कि किसी तरह उससे पीछा छूटे। मुझे लगा कि अब नयी मुसीबतें टूट पड़नेवाली हैं।

लेकिन वह गया नहीं। वह दुकान के बरामदे पर चढ़ आया। झुटपुटे में मैं उस जवान की शक्ल-सूरत ठीक से देख सका। करीब साढे छ: फुट ऊंचा। उतना ही हृष्ट-पुष्ट!

गेंहुआ रंग। माथे के बाएं कोने में एक बड़ा मस्सा था।

बारिश का जोर कम हो गया था। उसे महसूस हुआ होगा कि मैं कठिनाई में हूं। उसने बड़े कोमल शब्दों में पूछा—"जाना कहां है ?"

मेरे विषय में उसकी इतनी दिलचस्पी मुझे अखरी। हो सकता है, यह दूसरा पिपारडी हो। हो, न हो, दूध का जला छांछ भी फूंक-फूंककर पीता है।

मैंने सोचा कि झंझट खत्म हो जाए और कहा , "मुझे स्टेशन जाना है, पर रास्ता मालूम नहीं।" एक और झूठ जोड़ दिया—" एक साथी यहां के एक कारखाने में काम दिलाने का झूठा वादा करके ले आया और अब चंपत हो गया।"

"आज रात यहां कैसे बिताएंगे ? अगर आपकी इच्छा हो तो मेरे साथ चलें।"

मैंने इसकी अपेक्षा नहीं की थी। एक अजनबी पर यह रहम! आदमी कब से इतना उदार हो गया! पर उस चेहरे पर नजर डाली तो उसकी नीयत में कोई बुराई नजर नहीं आई। वह मुखमंडल निश्छलता का दर्पण-सा लगा।

पानी थम गया था। पेड़ों के पत्र-जाल से जुगनू स्वाभाविक प्रेम-नृत्य कर रहे थे।

वह सड़क पर उतरा।

"आप की गाड़ी कल सवेरे ही है।"

मुझे ऐसी ताकत का प्रभाव-सा महसूस हुआ जिसे मैं शब्दों में नहीं बता सकता। मैं भी नीचे उतरा। उसने छाता यों संभाला कि मैं न भीगूं। वह मेरे शरीर से सटकर खड़ा हो गया। उसी स्थिति में हम दोनों साथ-साथ चले। मुझे ऐसा लगा कि बहुत दिनों के बिछोह के बाद मिला हुआ सगा भाई मेरी बगल में चल रहा है।

उसने अपना नाम बताया— "ईप्पन।"

मैंने भी एक नाम बताया। वह झूठा नाम था।

उस झूठ की याद का घाव अभी भरा नहीं और मुझे बड़ी टीस दे रहा है।

महाविद्यालयी छात्र ईप्पन होस्टल में रहता था। होस्टल का फाटक बंद पड़ा था। होस्टल के फादर का हुक्म था कि रात को बाहर नहीं जाना चाहिए। गिरजे का त्योहार होने से रियायत तो थी। पर रियायती समय के भीतर भी ईप्पन पहुंच नहीं सका था।

ऐसे दिनों के हिसाब से ईप्पन ने उस रोज भी वही किया! होस्टल की एक तरफ की दीवार फांदने में ईप्पन ने मेरी भी मदद की। वह दुमंजिला मकान एकदम खामोश था। कहीं रोशनी नहीं थी। ईप्पन का कमरा निचले तल्ले पर था जो बंद नहीं रहा। ईप्पन ने कमरा खोला। बत्ती जलाई।

मैं बाहर झिझकता हुआ खड़ा रहा। दरियादिली की भी हद होती है! मिट्टी की सुराही में पानी लिए ईप्पन आया। बोला—"पांव धोइए।"

मैंने हुक्म माना।

कमरा छोटा होने पर भी साफ-सुथरा था। दो बेंचों को जोड़कर खटिया तैयार की थी, एक आराम-कुर्सी और मेज। बस! इतना ही फर्नीचर था। मेज पर रखी पुस्तकों में

'बाइबिल' और तालस्ताय का 'पुनरुत्थान' था। उस कमरे में सिर्फ दो तस्वीरें थीं — गांधी जी और सलीब पर चढ़ाए गए ईसा मसीह!

ईप्पन ने हठ किया तो मैंने पुराने कपड़े बदले। मेरी मैली गीली कमीज-धोती कमरे के एक कोने में डाल दी गईं। वे गंदे कपड़े उस वातावरण के बिल्कुल लायक नहीं थे। ईप्पन ने बिस्तर लगाने के बाद कहा—"आप बहुत थके होंगे। जल्दी सो जाइए।" कहकर ईप्पन आराम-कुर्सी पर लेट गया।

मैं उस खटिया पर लेटकर सोने के लयाक कहां था!

"मैं यहां लेटूंगा। सिर्फ एक चादर दें।" मैंने जमीन की ओर इशारा करते हुए कहा।

ईप्पन नहीं माना।

"वह बाद में देखा जाएगा...।"

ईप्पन ने मुझे जबरदस्ती पकड़कर बिस्तर पर लिटा दिया। मुझे लगा कि वह युवक अंधे और कोढ़ी की तीमारदारी करते ईसा मसीह का अनुयायी होगा।

गंधाता मैं उसे अपने पास लेटने को कैसे कहता? कैसे न कहता? बड़े संकट में पड़ा था।

ईप्पन ने बत्ती बुझाई।

वह कुर्सी में लेटते ही सो गया होगा। उसके खर्राटे साफ सुनाई दे रहे थे।

मैं भी सो गया। उस दिन से पहले इतनी गहरी नींद मैं सोया नहीं था।

मैं गिरजाघर की प्रभाती-प्रार्थना सुनकर जाग पड़ा। सूरज निकल आया था।

बाहर बरामदे में ईप्पन किसी से ऊंची आवाज में बात कर रहा था। मैं समझ गया कि वार्डन था। वार्डन अपनी अनुमति के बिना किसी मेहमान को कमरे में ठहराने के कारण नाराज था। इसीलिए डांट रहा था। लेकिन त्योहार पर गांव से साला जब मिलने आए तब रात को सोए हुए फादर को जगाने की कोशिश ईप्पन कैसे करता?

मेरा मन कृतज्ञता से भर उठा। परंतु कमरे में ईप्पन के आने पर मैंने यह बात छिपा ली कि मैंने उनकी बातें सुननी हैं।

मेरी अटैची रात में रखी जगह पर ही थी। कुर्ता-धोती गायब थे। ईप्पन ने नौकर को उन्हें धोने का हुक्म दिया था।

मैंने पूरा दिन वहीं बिताया। मेरी कमीज के सूखने में देर भी लगी। मुझे लगा कि ईप्पन ने सोच-समझकर ही ऐसा किया। वह हठ करता रहा कि मुझे रात की गाड़ी से ही भेजेगा। कमरे से मेरा बाहर निकलना भी उसने रोक दिया।

सांझ के बाद हम दोनों साथ-साथ स्टेशन गए। ईप्पन मेरे विषय में कुछ भी जानना नहीं चाहता था। उसी ने मेरे लिए टिकट लिया। मैं धन्यवाद भी नहीं दे सका। गाड़ी के छूटने का वक्त आया तो मैंने उसकी हथेली पकड़ प्यार की निशानी के रूप में दबाई।

उस क्षण मैं भावविभोर हो उठा। बातों की गुंजाइश नहीं थी।

ईप्पन टार्च जलाकर हिलाता रहा। काफी दूर तक मैं वह ज्योति देखता रहा।

निर्जन डिब्बे में बैठकर मैंने रात-दिन के हर अनुभव पर सोचा। जागते हुए ही मैंने सपनों का निर्माण किया। फिर से त्योहार का जुलूस मन में घूमता रहा। उसमें अन्तोणी भी था। खादीधारी सज्जन जो दीवार पर युद्ध-प्रचार के चित्र रखता था—उस भीड़ में था, पिपारडी भी था। आराट्टुपुषा के पूरम की डींग हांकनेवाला छोकरा और कोयले से इंकलाब की विजय लिखनेवाला लड़का—दोनों ने मुझे पहचाना।

मैंने स्वयं से पूछा—'मेरा मुल्क कब सुधरेगा?'

उन घटनाओं को हुए करीब नौ साल बीत चुके हैं। ईप्पन अब जिंदा नहीं है। क्या ईप्पन उस दिन पहचान गया होगा कि मैं भी संघर्ष में लगा सिपाही हूं? मुझे कई बार ऐसा शक हुआ था। नहीं... ऐसा संदेह ही मैं क्यों करूं?

मानव का मूल्य और भी शायद घटे। फिर भी मैं निराश नहीं हूं। ईप्पन जैसे लोग क्यों आगे भी पैदा न हों? वे ऐसे दीपक हैं जो घुप्प अंधेरे में भी रोशनी लाएंगे।

त्याग की मूर्ति

मैं उरूवा के संक्रामक रोग अस्पताल के तीसरे ब्लाक में लेटा हूं। इस कमरे में मैं अकेला हूं। मेरे साथ और दो लोग थे। मगर वे कल व परसों एक-एक कर चले गए। अब मुझे भी डर लगता है। यहां आए सातवां दिन है। घर पत्र भी लिखा है, पर कोई मिलने नहीं आया। शायद मेरी चिट्ठी घर नहीं पहुंची हो।

फूस के गद्दे पर लेटे-लेटे मैं खुली खिड़की से बाहर देख सकता हूं। वहां का सारा दृश्य नजर आता है। उरूवा बाजार में इस समय लोगों की भीड़ रहती है। उन सड़कों पर भीड़ कभी नहीं थमती। क्या वे लोग इन ब्लाकों व शेडों में नारकीय पीड़ा झेलते इन सत्तर रोगियों के सुख-चैन पर सोचते होंगे?

जीवन को स्फूर्ति देती ठंडी बयार की तरह हेलन कमरे के भीतर आ गई। मैं उस वक्त ऊंघ रहा था। मेरे माथे पर चेचक के दाने पके पड़े थे। उसने माथे पर हथेली रखते हुए पुकारा—''ओ भाई!''

उसके हाथ का स्पर्श शीतल था, संबोधन मीठा। वह शेल्फ में रोटी व दूध ढक्कन से बंद कर कमरे से जाने लगी। तभी उदास आवाज में मैंने पुकारा— ''हेलन!''

उसे जल्दी थी। उसे केवल मेरी ही सेवा नहीं करनी थी। मेरी तरह अन्य कितने ही रोगी हैं। हेलन उन सब की खुराक पहुंचाती है। यह उसकी सबसे व्यस्त घड़ी है। फिर भी मेरे पुकारने पर वह लौट आई।

''आपने मुझे याद किया?''

''हेलन, काश, मैं यहां से जल्दी जा पाता।'' सारे रोगियों की स्थायी शिकायत मैंने भी दुहराई। वह ऐसी शिकायतें और प्रार्थनाएं कितनी ही बार सुन चुकी है। हेलन इत्मीनान से मुस्कुराते हुए बोली— ''आप जल्दी ठीक हो जाएंगे।''

''और कितने दिन लगेंगे?''

''थोड़ा सब्र कीजिए न, थोड़ा सा...'' कहती हुई वह बाहर चली गई।

मन एकदम बुझा-बुझा है। अंग-अंग जल रहा है। शरीर पर तिल-भर जगह दानों से नहीं छूटी है। हाय रे! इस हालत में कितने दिन बिताने होंगे?

सामने पानी-भरी बालटी रखी थी। उसमें मैंने अपना चेहरा देखा। हे प्रभु! मैं खुद अपने ऊपर यकीन नहीं कर पाता। तमाम बदन पर दाने उभर आए हैं। पके हैं। मानो नकली मोती बिखरे पड़े हैं। बीमारी से ठीक हो जाने पर भी क्या दाग बचे रहेंगे? तो मेरी कहानी खत्म समझिए। सूरज डूबा। वरदन आया, लालटेन जला कमरे मे टांग दी। वरदन यहां का जमादार है। उसकी बिरादरी के कई स्त्री-पुरुष यहां हैं। जीवित रोगी की सेवा-टहल करना और मरने पर उसे मिट्टी देना उन्हीं का काम है।

ये भंगी लोग! क्या इन्हें डर नहीं लगता? कौन जाने? मगर, कभी-कभी इन पर भी यह रोग धावा बोलता है। ये भी मर जाते हैं। फिर भी ये इस काम में लगे रहते हैं। ऊंची जाति के लोग इस काम पर नहीं आते न?

रात की कंजि (चावल का दलिया) लेकर कंपाउंडर के घर से हेलन और सहकर्मी निकले हैं। उन्हीं की लालटेन की रोशनी आ रही है। चार्ली के हाथ में अचार होगा। हेलन और 'मेरी' कंजी लेकर चलेंगी। सात ब्लाकों और दो शेडों में कुल सत्तर रोगियों को खाना खिलाना है। क्या उनके हाथ नहीं दुखते होंगे? वे कब सोएंगे? मुंह अंधेरे ही उठकर फिर से रोगियों की खुराक तैयार करनी पड़ेगी।

नियमानुसार कंपाउंडर और उसकी पत्नी रात की दवा पिलाकर, कुछ मीठे शब्द सुनाकर व हंसी-मजाक करके चले गए। उनमें कितनी सहनशीलता और विवेक है! लोगों के रोग की कठोरता के अनुसार अलग-अलग दवा देना है। उसमें चूकने पर खेल बिगड़ जाएगा। मगर वे कभी नहीं चूकते।

वे घड़ी की सूइयों की तरह सावधानी व पाबंदी का निर्वाह करते हैं। उफ तक नहीं करते। पहले वे दोनों ही थे। अब बालिग संतानें भी हाथ बटाती हैं— चार्ली, हेलन व मेरी। कंपाउंडर कहते हैं कि हर साल यह महामारी यहां धावा बोला करती है।

नींद मानो कुट्टी कर बैठी है। हाय! कैसी उमस! फूस के गद्दे पर लेटे-लेटे सारा बदन दुखता है। बाहर अच्छी हवा है। शायद बरामदे में थोड़ी देर खड़े रहने से कोई मुसीबत नहीं होगी।

लगता है, कंपाउंडर अभी सोए नहीं। उनके कमरे में रोशन दिखाई दे रही है। शायद वे बाइबिल पढ़ रहे होंगे। इतवार को उन्हें गिरजा जाने की फुरसत नहीं मिलती। उन्हें गिरजा जाने की इच्छा भी नहीं रहती। तो भी कैसी भक्ति-भावना है उस सज्जन में?... मैं खुद अनुभव कर चुका हूं कि अंधे और कोढ़ी की सेवा-टहल करते समय ईसा मसीह के बारे में कहते हुए वे रो पड़ते हैं।

मेरे मन में ख्याल उठते रहते हैं। चेचक ने एक भी घर को नहीं बख्शा है। मौतें भी काफी होती हैं। क्या इस महामारी की कोई प्रतिरोधी औषधि नहीं? इतने ही दिनों में नगरपालिका मोटी रकम खर्च कर चुकी है। ज्यों ही जानकारी मिलती त्यों ही वे रोगी को ढूंढ़ निकालकर यहां पहुंचा जाते हैं। लोग रोज आते रहते हैं। ब्लाक भर गया तो शेड तैयार किए। परंतु कंपाउंडर और उनके परिवार के लोग ज्यादा-से-ज्यादा कितने लोगों की सेवा-टहल कर सकेंगे?

जब सिरदर्द व बुखार हद से ज्यादा बढ़े तब मैं सरकारी अस्पताल गया। वहां तीन दिन लेटा रहा। शरीर का तापमान 106° तक बढ़ा। चौथे दिन बुखार उतर गया। मैं भी खुश था कि अब जल्दी घर जा सकूंगा।

रात में जांघ, चेहरे आदि में खुजली-सी हुई। सवेरे देखा तो उन जगहों पर छोटे मुंहासे-से दाने मिले। मन को समझाया कि मच्छरों के काटने के निशान होंगे। परंतु डाक्टर

के आने पर बात खुली। मेरे चेहरे पर थोड़ी देर तक ध्यान से देखने के बाद उन्होंने कहा— ''डरने की कोई बात नहीं। चेचक है...''

''चेचक !'' सुनकर मैं चौंक उठा। डाक्टर ने कमीज ऊपर उठाकर जगह-जगह देखा। चेचक ही है! बेशक! अब मैं क्या करता... ?

''आपको हम यहां रख नहीं सकते! आप या तो घर जाइए या संक्रामक रोगों के अस्पताल में जाना पड़ेगा...''

मैं बड़ा परेशान था। यहां मेरी देख-रेख के लिए कोई नहीं था। होने पर भी नगरपालिका को पता लगे तो वह जुर्म होगा। मैं गांव की यात्रा नहीं कर पाऊंगा। संक्रामक रोग अस्पताल की ही शरण ली। मेरा इरादा सुनकर डाक्टर ने और एक बार समझाया — ''वहां थोड़ी-बहुत तकलीफ हो सकती है। आप हिम्मत न हारें।''

''नहीं। हिम्मत नहीं छोड़ूंगा। मैंने तय कर लिया।''

उरूवा के मैदानों में से एक में बड़ा मकान। वहां कुछ रोगी और उनकी तीमारदारी के लिए डाक्टर, स्टाफ व नर्स लोग। मेरी कल्पना का संक्रामक रोग-अस्पताल यही था। करीब-करीब ऐसा ही। फिर मैं क्यों संकोच करूं ?

एंबुलेंस आई। मैं उसमें चढ़ गया। दोपहर की धूप में भी भीड़-भरी सड़कों से एंबुलेंस उरूवा की तरफ चली। एंबुलेंस में मेरे अलावा एक काली बदसूरत लड़की भी थी। जब मोटर नुक्कड़ व मोड़ पार करती तब वह लड़की चिल्लाकर आसमान सिर पर उठा लेती।

एंबुलेंस एक जगह रुकी तो मैंने बाहर देखा। एक खुली जगह पर कुछ छोटे-से ब्लाक और शेड थे। हम लोग उनमें से एक के सामने खड़े थे। एंबुलेंस के चारों तरफ अशोक वाटिका में सीता का पहरा देनेवाले से कुछ साथी आकर खड़े हो गए।

अच्छा, यही आइसोलेशन अस्पताल है। मेरा कलेजा जोर से धड़क रहा था। न डाक्टर हैं, न नर्स। वरदन के साथी मुझे घूर-घूरकर देख रहे थे, मानो मैं कोई प्रदर्शनी की चीज हूं। उनकी भाषा मेरी समझ में नहीं आती थी। मेरी भाषा वे भी नहीं समझ रहे थे।

सामान्यतया बेहतर कहलाने लायक वस्त्र पहने एक स्त्री वहां आ गई। एंबुलेंस मुझे उन्हें सौंपने के बाद चली गई। मेरी कठिनाइयां सुनकर उन्हें भी दु:ख हुआ। तभी उस औरत के पति भी वहां आ गए। वे थे कंपाउंडर। उन्होंने वहां का हाल-चाल मुझे बताया। सुनने से पहले ही मेरी थकान बढ़ने लगी थी। सुनने पर दुगुनी हो गई। सभी ब्लाकों में रोगी भरे पड़े हैं। सिर्फ शेड में जगह है।

वह शेड। मैं जिंदगी में पहली बार चेचक के रोगियों को देख रहा था। सूखे, फटी दरारों से भरे खेत जैसे उनके शरीर। उस द्वार पर मैं असहाय हो बैठ गया। मेरी आंखों से आंसू बरस रहे थे। मुझे मां और घर के दूसरे लोग याद आए। रोगाणुओं को फैलने से रोकने के लिए शेड के चारों ओर बुझा चूना छिड़का गया था। उसमें पेशाब के मिलने पर उठती बू से सांस घुट रही थी।

वह रात शेड में ही बितानी पड़ी। और कोई चारा नहीं था। वहां के अनुभव... नहीं बाबा, न कहना ही बेहतर है। इसके पहले भी अनके लोगों को अनुभव हुआ है, आगे भी होगा।

अगर रहमदिल कंपाउंडर शीघ्र ही मुझे ब्लाक में जगह न देते तो मेरी दशा दयनीय होती। यहां भी कठिनाइयां और परेशानियां हैं, पर शेड से कम।

ब्लाकों के बीच कंपाउंडर का निवास रेगिस्तान के बीच नखलिस्तान-सा है। वह हरियाली सूख जाए तो यहां का जीवन अस्त हो जाए। कंपांउडर सूट-बूट नहीं पहनते। न बड़ी-बड़ी डिग्री रखते हैं। परंतु यहां सभी उन्हें बहुत मानते हैं। जिन रोगियों की हालत नाजुक हो उनको रात-भर जगकर ये दवा पिलाते और सेवा करते हैं। वर्षों से वे आदमी को कीड़े की तरह छटपटाते , मरते देखते आए हैं। इसके बावजूद आज भी वह दृश्य देखते समय उनकी आंखें भीगती हैं। कुछ लोगों की राय में वे दिल के कमजोर हैं! हो सकता है।

एक बार एक अमीर तंबाकू-व्यापारी ने चंगा होकर घर जाते समय चार्ली को खुशी से दो रुपये दिए। उसने मांगा थोड़े ही था। मगर कंपाउंडर ने उसे वापस करा दिए। अपने काम के लिए वे नगरपालिका से वेतन पा रहे हैं। फिर रोगियों से पैसे क्यों लें? वह गलत है न? कंपाउंडर ने यही कहा था। वे ऐसे मौकों पर वेतन का जिक्र करते। मगर वेतन की रकम पूछने पर वे हंसकर टाल देते। जरूर वेतन की राशि बड़ी नहीं होगी।

कंपाउंडर के घर की बत्ती बुझ गई। मगर वे लालटेन लेकर सातवें ब्लाक की तरफ जा रहे हैं। अरे हां, वह बूढ़ा! उसकी हालत बड़ी नाजुक है। शायद ही सूरज देख सके! पूरा शरीर फटा-फटा है। इसलिए घुइयां के पत्तों पर लिटाया गया है। वरदन ने यही कहा था। बड़ा धनी है। तो क्या हुआ? कल उसके घरवाले आए थे। मार्केट के पास मोटर रोकी थी। एक सेवक को मजदूरी पर तैनात करके यहां भेजा। छूत की बीमारी है न! ...

रात बहुत हो चुकी है। सो जाऊं।

एक हफ्ता बीता। सरकता ही सही, समय बीतता है। यहां आए आज चौदह दिन हो गए। कल मैं नहाया। दो दिन बाद यहां से जाऊंगा।

आज सवेरे एक घटना घटी। नये शेड में एक बालक को लाए थे। उसकी चीख-पुकार से रात-भर कोई सोया नहीं होगा। कहते थे, एक खास तरह का विलक्षण रोग था। नाक व मुंह से खून निकलता था।

कोई औरत शेड के सामने बैठी रो रही थी। उसे देख मैंने वरदन को बुलाकर पूछ-ताछ की। सिर हिलाते हुए वह निर्जीव स्वर में बोला—"मुर्दा, बाबू! लाश के लिए..."

ऐसा दृश्य यहां विरले ही दिखता है। किसी के मरने पर कोई उसे पूछने नहीं आता। उस औरत के पांच बच्चों में यह आखिरी था। शेष चार बच्चे भी चेचक से ही मरे। बेचारी उस मां पर क्या बीता होगा!

हेलन सवेरे की रोटी व दूध लेकर कमरे में पहुंची। उसकी आंखें लाल थीं। वह उस

औरत के समीप से यहां आई होगी। हमने बातें नहीं की। उसके जाते वक्त मैंने देखा — 'ट्रे' की पावरोटी पर आंसू की एक बड़ी बूंद टपक पड़ी है।

शाम को दो स्त्रियां और एक पुरुष कंपाउंडर के घर पर आए थे। लगता है, प्रतिष्ठित समाज के हैं। आज तक मैंने ऐसे लोगों को इधर आते नहीं देखा है। वे जाते-जाते कंपाउंडर से कुछ कह रहे थे। मां-बाप सिर झुकाए खड़ी बेटी की तरफ उदास नजर से देख रहे थे। मैंने वह दृश्य देखा।

कंपाउंडर आए तो मैंने विनोदी स्वर में पूछा — ''क्यों बाबू, लगता है कि बेटी के ब्याह की बातचीत चल रही है।''

वे कुछ नहीं बोले। कुछ सोच रहे थे। थोड़ी देर बाद निराशा और दुख की आवाज में कहा —''मैंने उससे कहा, बाबू, ज्यादा-से-ज्यादा कितने साल हम यहां रहेंगे? हमारे बाद भी यह रोग यहां होगा जरूर। क्या हम तब भी सेवा-टहल करने के लिए यहां रहेंगे? नहीं। हमारे जाने पर और लोग आएंगे—वे भी मरेंगे। उनके बाद दूसरे आएंगे... यही क्रम चलेगा न...''

उन्होंने एकाएक बात रोक दी। उनके चेहरे पर चिंता की शिकन पड़ रही थी। क्षितिज की ओर देखते हुए वे आगे बोले— ''मैंने बेटी से अधिक बातें नहीं कहीं। कहने पर वह रो पड़ेगी। यही उसकी प्रकृति है। छोटी बहन भी दीदी की ही आदत की नकल करना चाहती है। मेरा हौसला था कि आंख मूंदने के पहले उसे किसी की छांह में पहुंचा दूं।''

हेलन रात की खुराक लाई तो कंपाउंडर की बताई बातों के विषय मे पूछने की इच्छा हुई। मगर मैं उस अधखिले पवित्र और कांतिमय कुसुम से कैसे कहता, मुझे शब्द नहीं मिल रहे थे।

वह निश्छल मंदहास भेंट करती चली गई तो मैंने सोचा—

'क्या हेलन में भी नारी-सुलभ कोमल भाव और संवेदनाएं नही होंगी?... क्या उसकी जिंदगी हैजा और चेचक के बीच मुरझाने भर के लिए ही है... ?'

बारिश के बावजूद उमस जरा भी कम नहीं है। आज खुशी के कारण मैं शायद ही सो पाऊंगा। कल मैं इस बंधन से छूटकर बाहरी दुनिया में उड़ जाऊंगा। फिर भी मन सूना-सूना लगता है।

उस घर की तरफ देखते वक्त अकारण एक उदासी मन में उभरती है।

उस परिवार की मृत्यु के बाद क्या कोई यह काम करने के लिए तैयार होगा... ? बिल्कुल मामूली पारिश्रमिक के इस काम के लिए कोई शायद ही आए!

उस घर की बत्ती अभी नहीं बुझी है। कंपाउंडर बाइबिल पढ़ते होंगे।

शेखू

मौत की छांह में उस कुत्ते ने तीन दिन व तीन रातें बिताईं।

वह सड़क के किनारे आम के पेड़ के नीचे पस्त होकर गिर गया। उस जगह से वह फिर उठा ही नहीं।

वहां सड़क का एक बड़ा मोड़ है। एक तरफ दूर-दूर तक फैला रेतीला ऊसर मैदान है जिसमें जहां-तहां सूखे-मुरझाए पौधे हैं। सिर्फ उंगलियों पर गिनने योग्य मकान हैं। जितनी भी इमारतें हैं उनमें सबसे बड़ी इमारत एक लोहारखाना है। सड़क की दूसरी तरफ एक नाला है। उसके दोनों ओर लहलहाते अनान्नास के पौधे हैं। आज वह नाला बीती बरसात की दौलत का सपना ही देख सकता है। निश्चल पानी जहां-तहां जमा पड़ा है।

दूसरा वक्त होता तो शेखू हर दृश्य का मजा लेता। कोई भी नयी चीज मिलने पर वह उसके पास जरूर जाता और सूंघ लेने के बाद ही आगे बढ़ता। किसी से झड़प किए बिना उसका जी नहीं भरता। मगर आज इस दीन दशा में शेखू कुछ भी करने में असमर्थ है। वह आज झुलसानेवाला अंगारा नहीं रहा, जल-बुझकर राख हो चुका है।

पहले दिन शेखू फटी आंखों से सब कुछ देखता हुआ लेटा रहा। उसने सड़क से जाते किसी पर गौर नहीं किया। फिर भी लोगों ने उस पर नजर डाली। कुत्ता तो दूर, आदमी भी उस पेड़ के नीचे प्राण तोड़ दे तो वे लोग उसकी तरफ देखे बिना आगे बढ़ जाते हैं। परंतु आज सबने शेखू पर निगाह डाली। भूरे रंग का औसत से कुछ बड़ा लंबा-तगड़ा कुत्ता। गरदन पर पट्टे के पास दो गहरे घाव हैं। रोचक बात कुछ और है। नाक के ऊपर मुंह खोलने में अड़चन डालते हुए लोहे का पट्टा बंधा है। उसमें एक छोटा-सा कांटा और ताला भी है। मुंह के पट्टे को गले के पट्टे से छोटी जंजीर के जरिए बांध दिया गया है। लोगों को यह दृश्य विलक्षण लग रहा था। शेखू पैरों को आगे फैलाए बीच में सिर रखे लंबा पसरा हुआ है। उसके पास कोई नही फटकता। उसकी आंखों की चमक देखकर वे भयभीत हैं।

लेकिन यह दो दिन पहले की बात है। आज तो उसमें आंख खोलने तक की ताकत नहीं थी।

सायंकाल की निष्प्रभ किरणें पत्तों के झुरमुट से आकर उस अभागे को सहलाने लगीं। दिवस अनमना होते हुए निशा को रास्ता देकर खुद मैदान से खिसक रहा था। उस सांझ को शेखू आधी नीद में ऊंघ रहा था। बड़ी दूर खेतों के उस पार से एक आवाज लहर-सी आ रही थी— ''ऐ दामो...!''

शेखू ने भी सुना। उसने पल-भर के लिए दर्द और तकलीफ भुला दी। उसके कान खड़े हो गए। फिर वही आवाज!

"ऐ दामो...!"

शेखू का रग-रग पुलकित हो उठा। उसने पांव रेत में गड़ाए , फिर छटपटाकर उठने की कोशिश की। उसने रोएंदार पूंछ जमीन पर दे पटकी। कोई उसके मालिक को पुकार रहा है। उसका अपना मालिक...यदि उसने किसी के सामने सिर झुकाया है तो सिर्फ अपने मालिक के सामने। दिल खोलकर किसी को प्यार किया है तो अपने मालिक को ही। उस मालिक को अरसे से देख नहीं सका है। वह उसे देखने आया है।

परंतु शेखू उठकर खड़ा नहीं हो सका। उसके पांव एकदम कमजोर थे। वह आंखें बंद कर कान चौकन्ने किए लेटा रहा। वह आवाज थम गई है। हो सकता है, दामू कष्ट उठाकर उसे देखने आ रहा हो।

उस कुत्ते के हृदय में हर्ष समा नहीं रहा था। क्षण-भर बीतने दो, अपने मालिक के पैरों पर सिर टेके वह लिपट जाएगा।

उस स्वप्निल हर्ष की स्मृत्ति में वह परम निवृत्ति का आनंद अनुभव कर रहा था। लेकिन शेखू का मालिक कभी नहीं आया। उसने किसी किसान की पुकार सुनी थी। वह किसान मवेशियों को चराकर लौटने में देर करते अपने बेटे को पुकार रहा था।

टहनियां हिलीं, धूल उठी....कोई नजदीक आ रहा था।

शेखू ने धीरे से आंख खोली। खुदा का शुक्र, उसके मालिक को आखिरी क्षण में ही सही, आने की सूझी! मालिक की चिरपरिचित मूर्ति देख उसका दिल ठंडा हुआ। आंसुओं की बूंदें गाल से टपककर नीचे धूल में समा गईं। शेखू ने गले से आवाज निकालने की कोशिश की, पर आवाज बाहर नहीं आई।

बात की बात में उसकी सारी कोमल कल्पनाएं चकनाचूर हो गईं। सामने कौन दिखाई दे रहा है? आकाश को छूती वीभत्स मूर्ति! वह उसकी तरफ आ रही है। वह टेढ़ी चोंच और घुटी गरदन व सिर, उसने और कहीं पहले भी देखा है। उसके घर के समीप रेल की पटरी पर एक गाय मरी पड़ी थी तो वहां यही गंदा जीव पहुंचा था। उस दिन शेखू ने उसे धमकाकर भगाया था। संभवत: वह गिद्ध बदला लेने आया हो।

उसे अपने जीवन की स्थिति पर संदेह था। वह बत्ती अब अधिक देर नहीं जलती रहेगी। मौत उसे अपना बड़ा पर्दा ओढ़ाने के इंतजार में है। शेखू इस पर दुखी नहीं। वह हमेशा साहसी सिपाही रहा। फिर भी जीते जी दूसरे के मुंह का कौर बनना सोचा तक नहीं जा सकता था।

गिद्ध धीरे से झूमते-झूमते पास आया। उसके चेहरे पर संतोष की छवि झलक रही थी। वह उस कुत्ते को एकाध दिन से वहां देख रहा है। उसके प्राणों के निकलने की प्रतीक्षा करने का धीरज नहीं था। क्या विश्वास कि तब तक और कोई जीव उस पर नजर नहीं डालेगा? फिर भी वह कुत्तों से डरता है। इसलिए वह प्रतीक्षा में रहा। समय आने पर क्षण-भर में काम तमाम कर देगा।

जहां-तहां उठे बिना रोमोंवाली वह बड़ी गरदन टेढ़ी हुई। चट्टान तक को फोड़ने में

सक्षम वह चोंच नीचे की ओर धंसती गई।

शेखू !...

उसके शरीर के भीतर एक बिजली-सी कौंध उठी। ढीले पट्टे फड़क उठे। उसने अपने दिनों को याद किया। उसकी आंखों से चिनगारियां फूटीं। उसकी अंत:चेतना में विरोध की ध्वनि उठी। एक भीषण नाद!

शेखू को कठोर निराशा और व्यथा का अनुभव हुआ। काश, वह मुंह खोल पाता। वह पट्टा और ताला उधर से हट जाते !

गिद्ध ने इसकी आशा नहीं की थी। वह अचरज से दो कदम पीछे खिसका। यह कुत्ता मरा नहीं है। अब क्या किया जाए...वह क्षण-भर झिझकता रहा। वह दाएं-बाएं दोनों बगल से कुत्ते को देखता रहा। कुत्ता वहीं लेटा है। पर वह सिर जरा ऊंचाई पर उठाए है। किसी भी क्षण वह उसके ऊपर टूट पड़ेगा।

अंधेरा घना व गाढ़ा होता जा रहा था। अनमना गिद्ध पास खड़े नारियल की तरफ उड़ गया।

शेखू ने उसे अपनी जीत नहीं समझा। उस पक्षी को उस वक्त ऐसा लगा, बस। वह फिर से जरूर आएगा। क्या उस समय शेखू के बदन में जान बची रहेगी। जब उसके कच्चे मांस में टेढ़ी तेज चोंच धंस जाएगी तब... ?

नहीं, वह कभी नहीं होगा। उसको सिखा देगा कि शेखू किस धातु का बना है। भूखा होने से उसकी ताकत कम नहीं पड़ेगी। अपने बचपन में उसने अपने से भी बड़े 'टाइगर' को दबोच लिया था, फिर किसी कुत्ते में उसकी हस्ती को चुनौती देने की हिम्मत नहीं रही। कुत्ता ही क्यों? शेष सभी जीवों की भी यही बात है। उन दांतों में फौलादी ताकत है। कुत्ता, सियार, बिल्ली, मुर्गी, गाय ही क्यों, आदमी तक उसे देख जान लेकर भागते थे। वह इतना ताकतवर और हिम्मतवर है। वह छोटा-मोटा सामंत है। अपने इलाके का राजा है !

चेहरे पर बंधा लोहे का पट्टा उसको बेजार कर रहा था। कैसा है मुआ यह पट्टा! यही उसकी हर शिकायत का जिम्मेदार है। और किस कुत्ते पर ऐसी बला आई है! आजादी छीननेवालों पर उसे बड़ी नफरत व रोष हो आया। उसने उनके प्रति सम्मान के कारण ही अभी तक पट्टा दूर नहीं फेंका । आगे वह पट्टा फेंक देगा। दिन निकलने दीजिए ! उसे कहीं-न-कहीं पटककर तोड़ देगा। मनहूस पट्टा, जंजीर और कांटियां।

उसने यह बात जान-बूझकर नहीं भुलाई थी कि उसमें अब ताकत नहीं रही। कई बार उसने उसे तोड़ने की कोशिश की, पर हार गया है।

सांझ को एक बुजुर्ग दुकान से सामान खरीदकर अपने आप बड़बड़ाते, थूकते-खंखारते घर लौट रहे थे। उन्हें शेखू को देख कुतूहल हुआ। समीप जाकर थोड़ी देर देखते रहे और अपनी लंबी छड़ी से शेखू का पट्टा हिलाने की कोशिश की।

शेखू अपनी पड़ोसिन 'रोजी' से पहले इश्क के दिनों की याद में खोया हुआ था। इसी वक्त बुजुर्ग ने छड़ी से उसे सहलाया। शेखू को बहुत बुरा लगा। बीच मे दखल देनेवाला

यह बदमाश कौन है? 'झबरा' हो सकता है।

झबरा भी 'रोजी' का आशिक होना चाहता है। मगर झबरा तो क्या, उसका दादा तक आए तो शेखू छोड़ेगा नहीं। वह भूंकता हुआ छलांग मारने लगेगा। मगर बेचारा नहीं पहचान सका। वह जमीन से इंच-भर भी उठ नहीं सका—उसकी गुर्राहट धीमी-सी कराह-भर रह गई थी।

बुजुर्ग क्या समझें कि उस कुत्ते के दिमाग में कैसे-कैसे पेचीदा ख्याल आ रहे हैं? उन्हें शेखू की गुर्राहट बिल्कुल पंसद नही आई। उन्होंने लोहे की मूठवाली छड़ी शेखू के माथे पर दे मारी और भुनभनाते चले— "कुलच्छन !..." गर्मी से बड़बड़ा रहा है। शेखू सन्न रह गया। न झबरा है न रोजी। दो पांवों पर चलता आदमी है, बस! वह भी चला गया। वैसे, वह इधर खड़ा भी रहे तो शेखू क्या कर पाएगा... ?

शेखू रो पड़ा। जिंदगी में पहली बार वह रोया।

मगर उसकी सुबकियां सुनने के लिए वहां कोई नहीं था। न रोजी ही थी जो आंसू चाट डाले या उसे होश में लाए। मालिक भी नही, जो उसके माथे को सहलाकर सांत्वना दे।

वह हार गया है। उसकी शक्ति चुक गई है। उसकी हिम्मत जवाब दे गई है। आगे उसका जिंदा रहना बेकार है।

बीते कुछ दिनों से वह आफतों से जूझता रहा है। कठिनाइयां बढ़ती गई थीं। फिर भी वह उम्मीद बांधे हुए था। उस पराधीनता के बावजूद उसने हृदय के कोने में बिल्लौर का महल बनाया।

वह बिल्लौर का महल जब चकनाचूर हो गया तभी शेखू अपनी दुर्बलता को पूर्णत: पहचान सका। उसको पूरा अहसास हो गया कि अब वह कभी उठ नहीं पाएगा। वह रो पड़ा।

उसके गरम-गरम आंसू के कण नीचे गिरने से रेत तक गल गई होगी।

शेखू ने अपने बचपन की यादों की ठंडी छांह की शरण ली।

वह जमाना ! वह बड़ा हृष्ट-पुष्ट व प्यारा था। उसकी मां के और भी कई बच्चे थे। उनका निवास एक छोटे नारियल के पौधे के थाले में था। लेकिन उसे मां का दूध मन-भर पीने के पहले वहां से जाना पड़ा। जब किसी ने उसे उठाया तब उसकी मां ने खलबली मचाई। वह भी चीखा-चिल्लाया।

नया घर बिल्कुल अनजान था। उसमें उसकी जिंदगी प्रारंभ हुई। प्रारंभ में उसे कुछ घबराहट महसूस होती रही। अपने छोटे-से गढ़े के मुकाबले समुंदर-सा बड़ा अहाता व आसमान को छूता महल-सा वह घर! वह घूर-घूरकर देखने लगा। उसकी परेशानी देख वहां रहनेवाले सभी लोग हंस पड़े। फिर भी वे दयालु थे। उन्होंने उसे दूध पिलाया। वह दूध अच्छा नहीं लगा। वह उसकी मां का दूध नहीं था।

उन लोगों ने उसका नामकरण किया — शेखू। वहां उससे पहले उसी नाम का एक

कुत्ता था।

वहां पहुंचकर बहुत दिन बीतने के बाद शेखू को अपनी बहादुरी दिखाने का मौका मिला। वह आंगन में नारियलों के ढेर की बगल में पांव समेटकर लेटा था। मछलीवाले मोहम्मद ने अनजाने उसके बदन पर पांव रखा। बाद में ही मोहम्मद को पता लगा कि वह नारियल का रेशा नहीं था। उसके पांव से खून रिस रहा था।

सभी ने उसे बधाई दी।

''होनहार नस्ल का है।''

परंतु वह प्रशंसा बराबर नही बनी रही। वह घर पर आनेवालों व घरवालों को भी डराने लगा। जब उसकी हड्डी में मजबूती आने लगी तब उसके खिलाफ शिकायतें भी बढ़ीं। वह आसमान में उड़ती चिड़ियों को भी नहीं बख्शता था।

घरवाले व गांववाले लोगों के लिए शेखू एक समस्या हो गया। उसकी बहादुरी व साहसिक काम सबको हद लांघते महसूस हुए। सब दामू को दोष देने लगे। उसी ने मांस-मछली खिलाकर कुत्ते की आदत बिगाड़ रखी है।

दामू के पिता ने भी उससे कहा— ''उसे कहीं ले जाकर फेंक दो—बला दूर हो जाए।''

असल में दामू उस कुत्ते को पसंद करता था। किंतु वह किसी को काट खाए तो दामू ही उसका जिम्मेदार होगा न?

शेखू को आज भी स्मरण है कि दामू ने प्यार व रंज-भरी आवाज में उसे बुलाकर डांटा था। उसे भी तो मन में बड़ा दर्द हुआ। पूंछ हिलाई। मालिक के घुटनों को सिर से छूते हुए उसने अपने मन की बात जाहिर की। वह होशियार था। शेखू ने कसम खाई कि बेकार किसी को तंग नहीं करेगा।

उस घटना के पश्चात शेखू लोगों को देखने पर उनसे जान-बुझकर कतराने लगा। वह अपना ध्यान हम-जात अन्य कुत्तों पर केंद्रित करने लगा। शेखू उम्र में अपने से बड़े कुत्तों के भी दिल दहला देता।

शेखू भीषण तूफान की तरह गरजता घूमता। वह दिग्विजय पर निकलता। मगर उसके बावजूद वह दोपाए आदमी से बचने का नियम नहीं भूलता।

शेखू ने कोई साथिन का चयन अपनी तरफ से प्रयत्न करके नहीं किया। उसका मत था कि मादा की खोज मे खुद चलना शर्म की बात है। ऐसी बात पर सोचने की फुरसत भी शेखू के पास नहीं थी। उस बहादुर ने भादो की मस्ती-भरी प्रेरणा को एक सपनें की तरह ही पहचाना।

'रोजी' उसकी नजर में एक मामूली कुतिया थी। शेखू ने उसी दिन रोजी की आंखों में एक नया मतलब पाया। उस दिन कहीं से भटकते आए एक भूरे कुत्ते को शेखू ने दांतों से नोचकर दूर फेंक दिया था। वह एक विजेता के रूप में सिर ऊंचा किए चारों तरफ देखने लगा तो बाड़ के पास खड़े-खड़े कनखियां मारती रोजी को देखा। उसके चपटे कान और

काला मखमली बदन शेखू को एकदम खूबसूरत लगे। फिर भी उसने अनदेखा करके लौटने की सोची। परंतु रोजी की आंखों में चुंबक-सा आकर्षण था। उसने उसे रोक लिया।

शेखू बाड़ को उछलकर लांघा और रोजी के पास पहुंच गया। उसके खून में गरमी आ गई। वह रोजी को इधर-उधर सूंघने और उसके चारों ओर परिक्रमा करने लगा। रोजी को शर्म आई। उसकी गुर्राहट ने रोजी को और मस्त कर दिया।

उन्होंने सात फेरे नहीं लिए। न अदालती कागज पर दस्तखत ही किए। फिर भी वे दोनों उस दिन दांपत्य के बंधन में बंध गए।

उस दशा में भी शेखू रोजी का स्मरण करके हर्षोन्माद में मूर्च्छित हो रहा है। वह रोजी को कितना प्यार करता था!

एक दिन मध्याह्न में शेखू रोजी के घर के पिछवाड़े अपनी प्रेयसी के साथ रंगरेलियों में मग्न था तो घर के मालिक ने यह देख लिया। पता नहीं क्यों, उसे ये नखरे पसंद नहीं आए। उस बहादुर ने रसोईघर का दरवाजा खोल जलावन की लकड़ी शेखू पर दे मारी। मगर वह रोजी की टांग पर जा गिरी और टांग की हड्डी टूट गई। रोजी चिल्लाने लगी।

घर का मालिक अपने घर को भागते हुए शेखू की तरफ देख दांत पीसता रहा — ''तुम्हें देख लेंगे।'' क्रोध-भरी नजर का यही अर्थ था।

उस दिन शेखू ने कुछ खाया-पिया नहीं। वह एक जगह सिमटकर चुप पड़ा रहा। वह एक निर्णय कर रहा था। उसका बदला लेना होगा। क्रूर मानव-जाति से। रसोईघर की स्त्रियां पूछ रही थीं— ''आज कुत्ते को क्या हुआ! बिल्कुल चुप-चुप-सा है।'' वह मुस्कुराया। वह अपना अगला कदम तय कर चुका था।

दूसरे दिन सवेरे दामू टहलने निकला तो शेखू भी साथ था। खेत मे पहुंचने पर उसकी जान में जान आ गई। वह जिसे खोज रहा था वही सामने था। वह तंग मोड़ से उसी तरफ आ रहा था। उसके मन में चिनगारी दहक उठी। वह मन मे कुछ भयभीत हुआ कि कहीं कुत्ता पिछले दिन का वैर-भाव मन में बनाए रखे तो क्या होगा? उसने पूछा — ''अरे, कुत्ता नहीं काटेगा न ?''

दामू का यकीन था कि शेखू सुशील हो चुका है। फिर भी निश्चित रूप से कैसे कहे! बोला—''नहीं-नहीं, वह तो पहले काटता था। अब वह किसी को नहीं काटता। है न शेखू... ?''

प्रश्न करने के क्रम में दामू ने उसकी ओर देखा। वह मुश्किल से एक गज आगे बढ़ा होगा कि पीछे से बड़ी दर्दनाक चिल्लाहट सुनाई पड़ी। वह बेचारा आदमी गहरे खड्ड में गिरकर छटपटा रहा था। दामू स्तब्ध रह गया। शेखू और वह आदमी जीवन-मृत्यु का संघर्ष कर रहे थे। उस संघर्ष में वह आदमी किसी तरह जिंदा बच गया। वह बाद में ही समझ सका कि पैर की पिंडलियों से कुछ मांस नष्ट हो चुका है।

शेखू की हिंसक प्रवृत्ति बांध टूटने से निकलती जलधारा की तरह चारों तरफ फैलने लगी। जो भी उसे नापसंद आता उसे वह छोड़ता नहीं। कुछ लोगों को शक होने लगा

कि कहीं शेखू पागल तो नहीं हो गया!

शेखू ने दामू से रोजी की बात कही पर वह समझ नहीं सका। आखिर लाचारी से दामू ने शेखू को जंजीर से बांध दिया गया। घर व बाग-बगीचे में जाकर घूमनेवाले शेखू को बंधन में डाल दिया गया तो उसके मालिक का दिल सचमुच दुखी हुआ। मगर और कोई चारा नहीं था।

दामू अपनी लंबी घनी मूंछ शेखू की नाक से छुआकर गुदगुदी करते हुए उसके पास बैठा और दुखभरी आवाज में पूछा—"शेखू! क्या तुम यह बंद नहीं करोगे?"

वह चुप था।

"क्या तुम आगे भी मुझसे यह कहाओगे?"

वह क्या जवाब दे?

"इतने दिनों तक झेलता रहा। अब सहन नहीं किया जाता।"

दामू ने उसके चेहरे की ओर देखे बिना ये शब्द सुनाए।

रात को लोगों का आवागमन थम जाने के बाद शेखू को खोल देते थे। वह आजादी से अधिक गुलामी के उस जीवन पर अपना आक्रोश प्रकट करता था। प्रथम दिन वह दिन-भर पूरी जमीन को रौंदता रहा। जो भी सामने आता उस पर हमला करने की कोशिश करता।

फिर भी वह रात को अपनी इच्छानुसार कहीं भी जा सकता था। दामू सोने के पहले उसे खोल देता। उस समय उसे अपार आनंद मिलता था। वह चारों तरफ कुछ दौड़ने-भटकने के बाद बरामदे में एक जगह लेट जाता।

शेखू के विपय में फिर से शिकायतें बढ़ती गईं। रात को खेत का पहरा देने जानेवाले और फिल्म देखकर लौटनेवाले उसका शिकार बनते।

गांववाले क्षुब्ध को उठे। वे पूछते थे कि ऐसे कुत्ते को दूर क्यों नहीं छोड़ आते?

दामू के पिता इससे दुखी हुए कि अपने बुढ़ापे में एक कुत्ते के पीछे सब की दुश्मनी मोल लेनी पड़ती है। निश्छल हृदय वे लोगों से प्रेम-संबंध पालना चाहते थे।

उनका दिल टूट-सा गया। उन्होंने शेखू को जान से मारने का काम एक बंदूकवाले को सौंप भी दिया, मगर दामू का दिल नहीं मानता था। उसी ने शेखू को पाला-पोसा, बड़ा किया था।

बंदूकवाला खाली हाथ लौट गया।

पिता व पुत्र में विवाद छिड़ गया।

वृद्ध ने शेखू को एक जगह यह कहते हुए बांध दिया— "आगे तुम्हारा कुत्ता किसी को काट खाए, तब..."

शेखू अपनी जगह से सब बातें सुन रहा था।

इसी विवाद के बाद शेखू के मुख पर पट्टा बांधा गया।

गुलामी के इस निशान को पहनने की अपेक्षा मौत ही बेहतर थी। उसे भी यह महसूस हुआ है। वह जंजीर और कांटा धारण कर शेखू बाहर नहीं निकला। उसका हृदय जलती

भट्ठी-जैसा था। और कुछ सहन किया जा सकता है, मगर यह तिरस्कार!...दामू ने उसे क्यों जान से नहीं मार डाला?

शेखू ने अपने शरीर पर आदमी के हमले को अनुमति कैसे दी — यह सोचकर खुद शेखू को आश्चर्य हुआ। पट्टा बांधने से उसकी गरदन और मुखमंडल पर घट्ठा पड़ गया है। परंतु उसके शरीर की शक्ति कम नहीं हुई। उसके मन में अब भी काफी स्फूर्ति है।

मुख का पट्टा — उसे वह तोड़नेवाला है। आज तक दामू के प्रति ममता के कारण सब्र करता रहा। दामू चला गया। अब वह किसकी राह देखे? किसके लिए?

नहीं, यह संभव नहीं!

विभ्रम के रेशमी धागे कातते उस कुत्ते ने स्मरण नहीं किया कि वह क्षण-क्षण मृत्यु की तरफ सरक रहा था।

कुछ जुगनू-से शेखू के सामने से उड़ चले। उसकी धुंधली आखों को उनका प्रकाश असहनीय लगा। उसे मानो भूतावेश हो गया। नरक के पिशाच मशाल जलाकर उसे फिर से सताने आते हैं।

मशालें उसके चारों ओर वीभत्स नृत्य करती हैं।

शेखू आंखें बंद किए लेटा था। वह अपना अप्रिय दृश्य भुलाने की कोशिश करता था। उसके पहले भी ऐसा अनुभव उसे हुआ है। वह फिर से दुहराया जानेवाला है। शेखू का शरीर अकड़ गया। आदमी और पिशाच मिलकर उसे सताने आए हैं।

उसने भुलाने की कोशिश की। तो भी पुरानी याद उसे सता रही थी।

दामू उस समय व्यापार के लिए कहीं गया था। जाते वक्त वह शेखू की अच्छी तरह देख-भाल करने का प्रबंध करना भूला नहीं था। परंतु उसकी आंख की ओट हो जाने की देर थी कि शेखू के बुरे दिन शुरू हुए। ठीक वक्त पर खाना मिलना बंद हो गया। लोग कभी-कभार ही उसकी जंजीर खोलते थे। घरवालों में आया परिवर्तन शेखू से छिपा नहीं था। इसीलिए उसने जंजीर से बांधने आए लड़के को जरा-सा छेड़ा। उसने नहीं सोचा कि यह बात आगे चलकर बड़ी आफत का कारण बनेगी। वह अपने मन की चिढ़ को जरा-सा ही प्रकट करना चाहता था।

क्या खून रिस आया? शायद ! नहीं-नहीं , खून जरूर निकला। आफत हो गई। मालिक के लोगों को कुत्ते का काटना — लक्षण अच्छा नहीं।....गरमियों का मौसम था। कहीं कुत्ता पगल तो नहीं?

लड़के को टीका लगवाने अस्पताल ले गए। शेखू को स्थायी जंजीर मिली। पहली योजना थी कि लाठी से मार-मारकर खत्म कर दिया जाए। परंतु कुछ होशियार लोगों ने मना किया। पागल कुत्ता है ! उसे जान से मारना नहीं चाहिए। चालीस दिन तक बांधे रखना चाहिए। खाना नहीं देना है। खाना खाएगा भी नहीं, क्योंकि कुत्ता पागल है।

वे सब शेखू से घृणा व तिरस्कार करने लगे। स्त्रियों और बच्चों ने ताज्जुब से उस पर

दृष्टि डाली। किसी ने पट्टा खोलने की याद दिलाई तो दामू के पिता ने कहा —"उसे वहां पड़ा रहने दो... खाना तो नहीं खिलाते ?"

उसने माताओं को सचेत किया कि बच्चों को कुत्ते के पास जाने न दें।

पास-पड़ोस वाले उस पागल सामंत को देखने आए। शेखू को उनके प्रति हमदर्दी हुई।

क्या ये आदमी इतने बेवकूफ हैं ?

किसी ने धारवाले बांस से उसे घायल किया। मुड़कर देखा। वह रोजी का मालिक था। शेखू के हृदय में द्वेष की भावना उमड़ उठी। उसकी आंखें अंगारे की तरह चमक उठीं। परंतु क्षण-भर सोचने के बाद वह नफरत जाहिर करते हुए एक तरफ खुद हट गया। उसके गले से कराह तक नहीं निकली।

यह देख वहां इकट्ठे लोग खिलखिला उठे। बोले —"मरियल!"

अभी कुछ दिन पहले तक जो लोग शेखू के डर के मारे बाहर निकलने में भी झिझकते थे उनकी टिप्पणी सुनकर उसे उनके प्रति हमदर्दी हुई। तब भी उसे शक हुआ —क्या आदमी इतने मूर्ख हैं ?

दिन गुजरते गए — एक, दो, तीन... जोर की भूख व प्यास। वह मनहूस पट्टा जीभ को निकालकर थकान भी दूर करने नहीं देता। जिल्लत तो सबसे ज्यादा अखरती है।

वह हर क्षण अपने स्वामी की राह देखता रहा। उसका मालिक ही उसे समझ सकता है। पर वह नहीं आया।

तीसरे दिन रात को उसे बिल्कुल नींद नहीं आई। पूरब दिशा के बड़े अहाते में छोटे मंदिर का मेला है। पूरे माहौल को ध्वनिमय करता गाजा-बाजा गूंज रहा था। तरह-तरह की आतिशबाजी आसमान को मानो सफेदी में डुबाती रही। मशाल! हर दिशा में मशाल! प्रकाश! शेखू चकित हुआ। पिशाच उसे निगलने तेजी से आ रहे हैं।

जहां देखो आग। दोजख के शैतान ठठाकर हंस रहे हैं। उनकी जीभों पर आग के शोले नृत्य कर रहे हैं।

इस जगह से भागकर जान बचानी होगी, वरना मौत पक्की है।

उसे महसूस हुआ कि कोई उसे धधकती आग में फेंक रहा है। वह बंधन की खूंटी के चारों ओर दौड़ लगाने... । पर आवाज नहीं आ रही थी। वह तड़प उठा, मानो कोई चाबुक मार रहा हो।

शेखू सांस रोके खड़ा रहा। जंजीर न रही थी। संभवतया डर के मारे —उसका हर रोआं खड़ा हो गया। उसका कंधा सूज गया। गरदन कमान की तरह टेढ़ी हो गई। आगे के पांव उसने जोर से जमीन में गाड़ दिए। फिर पीछे की ओर झटका लगाया।

गुलामी की कड़ी टूटी!

वह भागा। पता नहीं, किस दिशा में ? जहां रास्ता देखा — दौड़ता रहा। उसके पैरों में नयी फूर्ति आ गई थी। पिशाच उसका पीछा कर रहे थे। जब वह कांटेदार बाड़ को

लांघ रहा था तब खरोंच आई। गरजती व तेजी से बढ़ती रेलगाड़ी-सी जलती आंखवाला पिशाच उसकी तरफ कूद पड़ा। उसे पता नहीं कि उस रात को वह कितनी दूर दौड़ा होगा। बहुत दूरी पार की होगी। आखिर वह सड़क के किनारे आम के पेड़ के नीचे थककर गिर पड़ा।

पिशाचों ने उसे अब भी पीछा नहीं छोड़ा है। चमकती छोटी आंखों से वे उसे खोजने निकले हैं।

रात ठंडी थी। चांद पश्चिमी ढलान में विश्राम करने लगा। शेखू कड़ी प्यास के मारे तड़फड़ा रहा था। जीवों को अनुभव होनेवाली भीतरी प्यास ने उस पर भी हमला किया।

उसे अन्न-जल लिए कितने दिन हो गए! उसकी हड्डियां-पसलियां उठती-गिरती थीं। सांस की गति बढ़ती गई। मुंह से झाग निकल रहा था जो लोहे के पट्टे को भिगोता हुआ बह रहा था।

नाले का कीचड़-भरा पानी चांदनी में झिलमिला रहा था। शेखू ने शायद वह देख लिया। अनिश्चय ने शेखू को आगे की ओर रेंगने की प्रेरणा दी। मगर वह अपनी जगह से रत्ती-भर भी हिला नहीं।

उषाकाल में ठंडी बयार बहने लगी तो वह ऊंघ रहा था। उसने सपना देखा। वह रोजी से इश्क कर रहा था और झबरा को धमकी देकर भगा रहा था।

पूर्वी आसमान सफेद हो उठा। कर्मसाक्षी भास्कर सारे चराचर को सहलाने-दुलारने पधार रहे थे।

नारियल के पेड़ पर गिद्ध अपने पैरों को समेटे तैयार बैठा था। बस, एक छलांग में कुत्ते के पास पहुंच सकता था। अपने में वीभत्स उसका मुख खुशी के मारे और घिनौना लग रहा था।

शेखू तब भी सपने में लीन था।

चोंच व नाखून पहली बार बदन पर लगे तो उसे लगा कि दामू आकर जगा रहा है। हर्ष के अश्रुकणों ने उसकी पलकों को भिगोया। देर से ही सही—मालिक आ तो गए।

काश, विभ्रम के वे बुलबुले न फूटते!

पतिदेव

विरोध भी हुआ और आपत्तियां भी बहुत हुईं। बड़ा बावेला मचा। मगर उसने इन सबकी परवाह नहीं की। घरवालों ने मनाया, हाथ जोड़े, विनती की। बिरादरी वालों ने धमकी दी। पड़ोसियों ने बुरा-भला कहा। पर राघवन नायर सब को अनसुना कर गया। उसके चेहरे पर शिकन तक नहीं आई। वह दृढ़ निश्चय कर चुका था। कोई उसके निश्चय को बदल नहीं सका।

यही नहीं, उसने सोचा कि ये लोग क्यों मेरे रास्ते में टांग अड़ा रहे हैं? इस पर उसे क्रोध आया व निराशा हुई। शिकारी की चोट खाए खूंखार जानवर की तरह वह घरवालों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। लंबे अरसे के बाद वह गांव आया था। इस पर भी चैन नहीं लेने देते! नासमझ गधे!

रात-भर नींद हराम करके उसने सोचा—ठीक है। अम्बुजम का ब्याह हो चुका है। इससे क्या हुआ? वह युवती राघवन नायर को पति स्वीकारने को तैयार है। उसके घरवालों को भी पसंद है। शेष रही अफवाह और शिकायत, सो तो ऐरे-गैरे फैलाते ही हैं। उस पर कान क्यों दिया जाए? देखने लायक औरत के मामले में लोग कुछ भी कहेंगे ही। क्या गांव-भर के मुंह पर ताला लगाया जा सकता है? अगर मां और दूसरे रिश्तेदार पसंद न करें तो वे जाएं भाड़ में। अम्बुजम! राघवन नायर उसे बहुत प्यार करता था, उसका ध्यान-मनन करता था। वह सुंदरी है— अतीव सुंदरी। राघवन नायर की धमनियां फड़क उठीं। शायद अभी फट पड़ें। उसे बेचैनी महसूस हो रही है। राघवन नायर आंगन में उतरकर चहलकदमी करने लगा।

बाहर बरामदे में अस्सी पार किए बुजुर्ग लेटे थे। उन्होंने उसकी घबराहट देखकर मन ही-मन कहा—'छोकरा पगल हो गया है। पूरा पागल!'

उस घर में अब चैन नहीं रहा। सब राघवन नायर की चर्चा करते थे। घर की स्त्रियों के लिए बाहर निकलना मुश्किल हो गया। उन्हें शर्म आती है। तालाब पर, मंदिर पर—चार लोग जहां भी मिलें वहीं—यही बातचीत का मुद्दा रहा। कैसा घोर अपमान!

आखिर मां ने पुत्र से कहा— "बेटा, तुम परिवार की प्रतिष्ठा पर पानी न फेरना! इस गांव में क्या इससे अच्छी लड़कियां नहीं हैं? अगर यही चाहिए थी तो उसके दूसरे के अपनाने से पहले तुम शादी कर सकते थे न?"

"...उसे मैं तुम लोगों के पास लेकर नहीं आऊंगा।" कहकर गुस्से में उसने अपनी पेटी व सामान लेकर घर छोड़ दिया। मां को भी लगा कि उसे कुछ नहीं कहना चाहिए था।

उनका विवाह संपन्न हो गया। न वस्त्रदान, न दावत। राघवन नायर ने अम्बुजम के

साथ उसके घर दो दिन बिताए। उसके बाद वह उसे अपने कार्यालय वाले शहर में ले गया।

प्रथम रात्रि! राघवन नायर अम्बुजम के सामने इष्टदेवी के भक्त की तरह खड़ा रहा। उस सौंदर्य की मूर्ति के सामने वह निश्चेष्ट रहा। मन में बड़ा असमंजस। अम्बुजम ने आज्ञा दी। उसने उसका पालन किया। वह पतिव्रता है। सवेरे बेडरूम से बाहर निकला तो राघवन नायर के मन में राहत थी—'किस्मत से अम्बुजम के अभी गर्भ नहीं है।'

वह पहले ही अम्बुजम से ब्याह करना चाहता था। उसने अम्बुजम के घरवालों से प्रस्ताव भी किया था। मगर जब वह सयानी हुई तब वह नहीं आया। लोग राघवन नायर के कार्यालय में प्रस्ताव लेकर पहुंचे। लेकिन उस समय राघवन नायर दफ्तर के कुछ झमेले में फंसा था। उसने उनसे कहा कि गड़बड़ी के ठीक होने तक इंतजार करें। मगर वे इंतजार नहीं कर सकते थे। कन्या सुंदर थी, मगर बड़ी विलक्षण प्रकृति की थी। पहाड़ के ऊपर से बाढ़ में बह निकलती जंगली नदी की तरह किनारे की सारी वस्तुओं को अपने में समा लेने की—उनका आनंद पाने की—प्रवृत्ति थी ! बस यही समस्या बहुत गंभीर थी।

घरवाले तंग आ गए। अम्बुजम ने वैयक्तिक स्वाधीनता पर पक्का विश्वास किया। ब्याह से पहले स्थिति ऐसी खतरनाक थी न ! आखिर घरवाले मामला बिगड़ जाने से पहले लड़की का ब्याह कराने के लिए मजबूर हुए। वह आदमी न खूबसूरत था, न फैशनवाला। अम्बुजम दुखी हुई कि ऐसे बंदर से मेरा पाला पड़ रहा है।

मां ने उसे समझाया— "...रहने दो! वह बड़ा धनी है। उसके अलावा वह तुम्हारी बात सौ फीसदी मानेगा।"

कंपाउंडर अम्बुजम का रूप-सौंदर्य देखकर चौंधिया गया। उसने नहीं सोचा कि कोई कीमती वस्तु टूट-फूट जाने से कम कीमत पर तो नहीं बेचते हैं। वह यही सोचने लगा कि श्रीमती को कैसे खुश रखा जाए ! ब्याह से पहले वह केवल 'हेल्थ पत्रिका' पढ़ा करता था। अब वह 'फिल्म इंडिया' और 'पिक्चर पोस्ट' का ग्राहक बना। उसे फिल्म में कभी कोई रुचि नहीं रही थी। अब वह थिएटर के 'बॉक्स' में हाजिरी देने लगा। अलमारी में पुरानी पड़ी दवाई की शीशियों की जगह सौंदर्यवर्धक वस्तुओं ने ले ली। वह कपड़े में, चाल-चलन में—प्रतिदिन कुछ-न-कुछ नवीनता लाता गया।

लेकिन इन सब बातों के बावजूद वह अपने को कमजोर महसूस करता था। पत्नी के सामने वह हमेशा मौन रहता। उज्ज्वल ज्योति के समान ज्योतिर्मयी पत्नी को छूने में उसे डर लगता था। पूरी कोशिश करने पर भी हीनता ग्रंथि ने उसे नहीं छोड़ा।

भूखा बच्चा भोजन की ओर जैसे ताकता है वैसे ही वह पत्नी को अपलक देखता। एक बार अम्बुजम ने पति से पूछा — "क्यों इस तरह घूरकर देख रहे हो? क्या मुझे खा जाओगे?" कहती हुई वह खिलखिला उठी। पति के स्वाभिमान को ठेस लगी। तथापि हिम्मत बांधकर वह आगे बढ़ा। उस स्नेही पति ने पत्नी को बलपूर्वक प्यार करना शुरू

किया।

"छि: ! ऐडोफारम की बू आती है !"

अम्बुजम नफरत से उसकी बांहों से खिसक गई।

रूपवती पत्नियां शत्रु होती हैं। वे पतियों की मानसिक शांति हराम कर देती हैं। पति आफिस में लिखा-पढ़ी करते हैं तो अपने दिल सोचते हैं कि पत्नी घर पर क्या करती होगी? अपने मन ऐसा ही सोचते हैं। मगर कोई सबूत या इशारा मिलने पर भी उन्हें पत्नी को नाराज करने की हिम्मत नहीं रहती।

कंपाउंडर दोपहर को भोजन करने घर आया तो अम्बुजम घर से गायब थी। बड़े कठघरे में बंद जानवर की तरह गुर्राते हुए वह टहलता रहा। पड़ोस से उस वक्त आराम से आई अम्बुजम ने पति के भाव-परिवर्तन पर बिल्कुल गौर नहीं किया।

"हूं... तुम कहां गई थीं? "

भय व क्रोध के सम्मिलित स्वर में कंपाउंडर ने पूछा।

थोड़ी देर उपहास की अदा में देखते रहने के बाद उसने जवाब दिया— "मैं आपकी गुलाम नहीं हूं।"

दहकती नजर से उसे देखती हुई वह भीतर चली गई। उसके ताप में वह बेचारा पसीना-पसीना हो गया।

कंपाउंडर को कई बार लगता था कि अम्बुजम का शील व व्यवहार अवांछनीय और असहनीय हो रहा है। उसे यह भी मालूम है कि अम्बुजम को उससे नफरत है। फिर भी वह उसे डांट नहीं सका। उसने उसे प्यार किया—भय-सहित प्रेम। पति उससे अलग नहीं रह सकता था। पति की बौखलाहट देखने से उसका मनोरंजन होता था। वह निस्संकोच अपने लिए पति के पैसे बहाती थी। कंपाउंडर तो पत्नी की एक मुस्कान व कटाक्ष के लिए कोई भी कुर्बानी करने को तैयार था। फिर भी उसे अम्बुजम का दूसरे घरों मे जाना पसंद नहीं था। उसने किसी-न-किसी तरह उसे रोकने का निश्चय किया। उसका एक ही उपाय था—फाटक बाहर से बंद रखना। आखिर लाचारी में उसने वह भी किया।

जब राघवन नायर ने स्वयं आकर प्रस्ताव किया तब अम्बुजम को बुला लाना पड़ा। घरवालों ने एक संदेशवाहक को भेजा। समाचार जानकर अम्बुजम खुश हुई। उसका जी उचटने लगा था। दिन में उसकी पसंद चाहे चले, पर रात को उस व्यक्ति के साथ रहना पड़ता था जिससे वह वह नफरत करती थी।

शाम को पतिदेव आए तो अम्बुजम ने कहा—"घर से आदमी आया है। छोटी बहन का ब्याह तय हुआ है। हम कल ही जाएंगे।"

अम्बुजम को अच्छी तरह मालूम था कि कंपाउंडर को छुट्टी कभी नहीं मिलेगी।

"मुझे छुट्टी नहीं मिलेगी, अम्बुजम!"

"हां, हां, आप ऐसा ही कहेंगे। मुझे मालूम है, जरा भी प्यार हो, तभी न...।" उसकी

आंखें छलछला आईं।

कंपाउंडर का दिल खुश हुआ।

वह बोला— "मैं ब्याह से पहले आऊंगा। तुम कल चली जाना।"

अम्बुजम यही चाहती थी।

कंपाउंडर के विवाहित जीवन का आनंद और संतोष से भरा अकेला दिन वही था। उस रात को उसने अम्बुजम का प्रेम, विरह का दुख—सब देखा। वह पछताया था कि इतनी पतिव्रता नारी पर वह शंकालु हो उठा था!

दूसरे दिन उसने पत्नी को विदा किया। उसने नयी वधू के लिए उपहार के रूप में एक कीमती साड़ी खरीदकर उसे सौंप दी। उसे यह तो समझ में ही नहीं आया कि दस-पंद्रह दिन रहने के लिए घर जाती बहू घर के पूरे सामान क्यों ले जा रही है। उसने मन को समझाया कि शायद वह अपने घरवालों को अपनी शान दिखाना चाहती होगी! ...

वह ब्याह के निमंत्रण की प्रतीक्षा में रहा। धीरे-धीरे उसे अहसास होने लगा कि उसका कुछ खो गया है। शादी का प्रस्तावित दिन एकदम नजदीक आने पर भी किसी ने उसे कोई पत्र नहीं भेजा। कंपाउंडर ने उसकी परवाह नहीं की। वहां उसे सौ काम होंगे।

थोड़ा-सा संकोच लिए कंपाउंडर ने पत्नी के घर में कदम रखा। वहां ब्याह की तैयारी का कोई निशान नहीं था। आंगन में पंडाल तक नहीं। वह कुछ सकपकाया। उसे पक्का मालूम है कि तारीख में गलती नहीं हुई। यहां तो कोई इंतजाम दिखाई नहीं देता।

अम्बुजम की मां ने बाहर आकर शंकित खड़े कंपाउंडर से कहा— "...आगे आपको यहां नहीं आना चाहिए। अम्बुजम आपसे रिश्ता नहीं चाहती। वह अपने पतिदेव के साथ चली गई है।"

वह चौंक उठा। उसे यकीन नहीं आ रहा था। उसने हिम्मत जुटाकर कहा—"मैं...मैं...पति, विवाह!"

"आप यहां से चले जाइए। नहीं तो किसी को बुलाना पड़ेगा।"

अम्बुजम की माताजी ने आदेश दिया तो रूमाल के कोने से आंसू पोंछते हुए वह अभागा लौट चला। उसके मन में भारी दुख था।

अम्बुजम और राघवन नायर बिना किसी झंझट के दिन बिताते गए। जीवन बड़ा सुहावना था। पैसे, खूबसूरती—सब कुछ है। राघवन नायर देखने में सुंदर था। उसकी उम्र पत्नी से कुछ अधिक थी। फिर कभी-कभी पति को शक होता कि क्या अम्बुजम् मुझे दिल से नहीं चाहती है? इस शंका का कोई कारण तो नहीं था। सिर्फ शक ही। अम्बुजम हर बात समझ रही थी। वह मन ही मन हंस पड़ती। ये पति लोग क्यों इतने हताश होते हैं? क्या ये संयम से नहीं रह सकते? राघवन नायर के नखरे देख वह सोचने लगी—'ओफ! यह आदमी तो पहले आदमी से भी मूर्ख है।'

उन्हें वहां रहते कुछ ही दिन बीते कि अम्बुजम ने प्रश्न किया—"क्यों जी, क्या मुझे

ताले में बंद रखने के लिए ले आए हो? क्या आप यहां पार्क और 'बीच' का रास्ता नहीं जानते? इस मनहूस शहर में क्या थिएटर तक नहीं? मैं इस तरह नहीं घुट सकती।''

दिलेरी के इन ठोस साहसी सवालों के सामने पति महाशय चुंधिया गए। कुछ भारी भूल करते जाने की अदा से उसने कहा— ''अरे हां, हां, हम सिनेमा देखने जाएंगे। आज ही

सही—रात को दूसरा शो...''

राघवन नायर उस खतरनाक माल को अधिक लोगों की नजर में पड़े बिना सुरक्षित रखना चाहता था। जिस पर उस मुहल्ले में केरलवाले अच्छी संख्या में रहते थे।

अम्बुजम उसके दिल की बात ताड़ गई। वह बोली—'किसी के देखने से कुछ नहीं होने वाला। मैं रात को सिनेमा देखने के लिए सज-संवरकर जा नहीं सकती। हम पहला शो देखेंगे।'

वे 'पहला शो' ही देखने गए। राघवन नायर का चेहरा जरा-सा रह गया। सभी उसकी पत्नी की ही तरफ देख रहे थे। सो क्यों? यही वह जानना चाहता था।

संदेह! शंका! उसे पत्नी के सतीत्व की ही चिंता थी। वह जानता था कि एक इकबाली गवाह का विश्वास नहीं करना चाहिए। फिर भी मन में डर था। वह पत्नी को कुछ मना नहीं कर पाता। उसका विश्वास था कि पत्नी से अलग होकर अपनी जिंदगी बिता नहीं सकेगा। वह पत्नी की खूबसूरती से सामने शेप सब भूल जाता। उससे दूर रहते समय दिल कचोटता और तब संदेह सिर उठाता।

उसके संदेह के पीछे कुछ कारण भी थे। एक दिन पत्नी ने नए फैशन की महंगी चोली पहन रखी थी तो पति ने पूछा— ''यह कब सिलाई थी?''

उसने लापरवाही से कहा— ''गांव से आते समय लाई थी।''

उसे यकीन तो नहीं आया। किसी का उपहार होना चाहिए। फिर भी वह पत्नी से यह बात किस तरह कहता? राघवन नायर ने उसके बारे में आगे कुछ नहीं कहा।

अम्बुजम प्रसूति के लिए गांव जाना चाहती थी। राघवन नायर को यह पंसद नहीं आया। क्या यहां अस्पताल नहीं? डाक्टर नहीं? उसने कई अड़चनें बताईं। फिर भी पत्नी की पसंद का ही वजन अधिक था। पति घबराने लगा। आंख की कीमत उसके नष्ट होने पर ही पहचानते हैं। बिना अम्बुजम के वह कैसे जिंदा रहेगा?

राघवन नायर पत्नी को उसके घर पर छोड़कर वापस आया। वह न अपने घर गया, न अपनी मां से मिला।

आखिर कई महीने कोख में रखा है न! किसी भी हालत में मां अपनी संतान को कैसे भुला दे? जो होना था हो चुका, फिर काहे की दुश्मनी? जब बूढ़ी मां ने सुना कि बेटे के बच्चा पैदा हुआ है तब उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वह बच्चे को देखने के लिए लालायित हुई। पारिवारिक रस्म के अनुसार उसने पुत्र-वधू को अपने घर पर बुलाने की राय दी।

दूसरों को वह पसंद नहीं आया। वे मानने को तैयार नहीं थे कि अम्बुजम राघवन नायर की पत्नी है। अंत में वे बूढ़ी की इच्छा पूरी करने को राजी हुए।

अम्बुजम ने वहां सबको अपने व्यवहार से खुश रखा। राघवन नायर की मां को भी वह शीघ्र ही पसंद आ गई।

''सुशील व विनीत बहू।''

किंतु सिर्फ एक व्यक्ति, अम्बुजम के क्रियाकलापों पर ध्यान देता रहा—राघवन नायर का छोटा भाई। यह स्त्री रात-भर जागकर क्या लिख रही थी? उसने पता किया कि किसके हाथ चिट्ठियां डाकखाने जा रही हैं? पड़ोसी के नौकर बालक के हाथ पत्र जा रहे थे।

राघवन नायर के छोटे भाई के हाथ में एक हफ्ते में पांच-पांच पत्र आ गए। पांचों अलग-अलग व्यक्तियों को लिखे थे। सभी मर्द। एक खत के अंत में लिखा था—

''इन दुष्टों के कारण दिल से कुछ लिख नहीं पाती। आपकी याद में तड़पती हुई रात के वक्त यह पत्र लिख रही हूं।''

पत्र की बात गांव-भर में फैल गई। अम्बुजम अब पति के घर पर नहीं रहती थी। वह अपने घर चली गई।

खबर पाकर राघवन नायर एक पागल की तरह गांव आ गया। उसने सारे पत्र देखे। उन्हें एक नहीं, कई बार पढ़ा। उसके सारे संदेह सत्य निकले। वह दगाबाज थी। वह पत्र लिए सारे परिचित घरों में गया। उसने दोस्तों व रिश्तेदारों के सामने अपनी भयंकर भूल स्वीकार की। वह अम्बुजम के पास गया ही नहीं। उसे बच्चे को देखने की इच्छा भी नहीं हुई। इसकी क्या गारंटी है कि बच्चा उसी का है? वह अभागा तलाक का सारा इंतजाम करके अपनी नौकरी के शहर को लौट चला।

अम्बुजम इस आंधी से उखड़नेवाला बांस नहीं थी। उसे अच्छी तरह मालूम था कि पतिदेव उससे अलग होकर जी नहीं सकेंगे। आज नहीं तो कल वह आएंगे जरूर। परंतु तब तक उसे एक नाथ की—संरक्षक की—जरूरत है।

वह पुराना कंपाउंडर अम्बुजम के घर पर फिर से आने लगा। उसे देखकर वह बेहोश हो गिर पड़ी। बड़ी देर तक उसने आंसू बहाए। वह कंपाउंडर को कितना चाहती थी! सब घरवालों की शैतानी थी! कंपाउंडर ने उसकी बातों पर विश्वास कर लिया। पत्नी को अपने बदन से सटाए उसने कहा—''जो बीत गया उसे भुला दो। मैं तुम पर विश्वास करता हूं।''

अब अम्बुजम उससे ऐडोफारम की बू की शिकायत नहीं करती। दोनों के संबंध बड़े घनिष्ठ हो गए।

पति-पत्नी के परस्पर असीम विश्वास को देखकर पास-पड़ोस की औरतें कहतीं—''हाय! हाय! ऐसे भी मर्दुए होते हैं!''

राघवन नायर की दशा बड़ी दीन-हीन थी। उसके मन में जोश ही नहीं रहा। उसे जिंदगी से नफरत हुई। प्रारंभिक क्रोध का नशा उतर गया तो वह पछताने लगा। वह दिन-रात अम्बुजम की बात सोचता। वह विस्मृति की कूड़ेदानी में टटोलने लगा। वहां उसे पत्नी

के खिलाफ कोई गवाही नहीं मिली।

उस आदमी का दिमाग गरम हो गया था। उसका ख्याल दूसरी दिशा में मुड़ा। किसने अम्बुजम के दुश्चरित्र का प्रमाण पेश किया है? अपने घरवालों ने जोकि अम्बुजम से सख्त नफरत करते थे। कैसे विश्वास करे कि सारे पत्र अम्बुजम ने ही लिखे? वह साजिश क्यों नहीं हो सकती? वह पत्नी से न मिला है, न दो बातें की हैं। वह कितनी व्यथित हुई होगी! सिर्फ पांच पर्चियों पर भरोसा करके इतना नाटक करनेवाला वही खुदगर्ज मूर्ख है! सारी कारस्तानी छोटे भाई व घरवालों की है। अम्बुजम तो बेकसूर है!

राघवन नायर का पत्र और मनीआर्डर आया तो अम्बुंजम को आश्चर्य नहीं हुआ। वह उसका इंतजार कर रही थी। हवा का रुख बदलेगा—इसकी पूरी उम्मीद उसे थी। उसने सौ शिकवे और अरमान जवाब में लिखकर राघवन नायर को भेजे। मगर कंपाउंडर को कुछ पता नहीं था।

घनघोर वर्षा की एक रात में एक युवक अम्बुजम के घर पर पहुंचा। वह कंपाउंडर था। उसने देखा कि ओसारे में अम्बुजम किसी से प्रेम-संलाप कर रही है। अम्बुजम को पता लग गया।

"भीतर चले आइए।"

पत्नी के सामीप्य का सुख पाते हुए स्वर्ग तक पहुंचा राघवन नायर बेडरूम में आया तो पूछा—"वह यहां क्यों आया है?"

साड़ी के आंचल से आंखें पोंछते हुए वह बोली— "वह कितने दिनों से यहां आकर मुझसे जिद कर रहा है।" यह कहते-कहते सिर में चक्कर आया। राघवन नायर ने सती-सावित्री पत्नी को सहारा देकर गद्दे पर लिटाया।

बाहर बारिश में झिझककर खड़े कंपाउंडर से अम्बुजम की माता ने कहा— "आप इस तरह आकर हमें तकलीफ न दें। उसे आपके साथ जाना पसंद नहीं। उसके पतिदेव आए हैं।"

"पतिदेव...!" कंपाउंडर ने आश्चर्य से पूछा।

"हां, हां, पतिदेव...।"

अबकी बार उसे घबराहट या परेशानी नहीं हुई। उसने बीती घटनाओं के बारे में सोचा। कंपाउंडर के ओठों पर हल्की-सी मुस्कुराहट झलक उठी। वह बारिश का पानी गिरने से बुझी मशाल फिर से जलाकर एक माई के लाल की तरह बिना किसी क्षोभ के हो अंधेरी गली में उतर पड़ा।

छोटी जिंदगी और बड़ी मौत

होटल में सब सो चुके थे। किसी भी कमरे में रोशनी नहीं थी। मैंने किताब बंद कर दी। खिड़की के पास जाकर बाहर दृष्टि डाली। मुझे प्यास लग रही थी।

सुनसान गली से अकेले पैदल जाना और सिनेमाघर के सामनेवाले ईरानी होटल से एक प्याला चाय पीकर लौटना मेरा बहुत प्रिय कार्यक्रम है। मैं अक्सर ऐसा करता हूं। उस दिन भी यही करने का निश्चय किया।

बाहर बरामदे पर किसी की आहट सुनी तो मुड़कर देखा। मोहिउद्दीन दरवाजे पर खड़ा था।

मेरी समझ में नहीं आया कि यह बालक उस समय मुझसे क्यों मिलना चाहता है। मैंने सुना था कि उसकी तबीयत ठीक नहीं। लेकिन अपनी व्यस्तताओं के बीच यह बात मैं भूल गया था। मैं ही उसे गांव से यहां लाया था। इस नाते उस बालक का हमेशा ख्याल रखना मेरी जिम्मेदारी थी। उसका कुशल-मंगल पूछने का दायित्व भी मुझ पर था। मैं ही उसका स्थानीय अभिभावक था। मैं ही उसका अकेला आश्रय था। वह बीच-बीच में किसी-न-किसी कारण व बहाने से मेरे कमरे में आया करता है।

मोहिउद्दीन से मिले तीन दिन हुए । तीन दिनों से कमरे की सुराही का ठंडा पानी बदला नहीं है। मोहिउद्दीन ही रोज सुराही का पानी बदला करता था। जब वह नहीं आया तब मैंने उसकी बात नहीं सोची। मुझे अफसोस भी हुआ, शर्म आई।

मेरे कोई सवाल पूछने के पहले वह कमरे के भीतर आ गया। खाट की चौखट पकड़ते हुए कहा— "उम्मा* को एक और खत लिखना। किसी-न-किसी तरह मैं गांव चला जाऊंगा।"

वह बालक एक-एक हरफ बड़ी मुश्किल से बोल रहा था। उसकी आवाज मानो एक गहरे कुएं की गहराई से आ रही थी। उसकी लाल-लाल आंखें और पागल कुत्ते की-सी हांफने की प्रक्रिया हर किसी को डराती। वह यों खड़ा था मानो बहुत भारी बोझ सिर पर उठाए हो।

मोहिउद्दीन ने आंखें एकाएक बंद कीं। वह जड़ से उखड़ी बेल की तरह जमीन पर मुरझाकर गिर पड़ा और खाट के पायताने पर सिमट गया।

उस वक्त भी मैं बिना हिले-डुले वहीं खड़ा था।

मैंन सोचा—इतनी जल्दी मोहिउद्दीन पर कैसी आफत टूट पड़ी? सोचते-सोचते सिहर उठा। उसके शब्द कानों में गूंज रहे थे। वे एक साधारण बालक के शब्द नहीं थे। जिंदगी-

---

* मां।

भर कष्ट व व्यथाएं झेले हुए एक आदमी के शब्द थे। उनमें घृणा, निराशा और असहायता से भी बढ़कर कोई ऐसी बात थी जो मेरी समझ में नहीं आई।

मैं जमीन पर सिर झुकाकर बैठा और उसकी पीठ हाथ से सहलाते हुए पुकारा—"मोहिउद्दीन!"

उसने न मुंह ऊपर उठाया, न कुछ बोला।

मैंने उसे और एक बार हिलाकर जगाया। बेहोश किए गए मेढ़क के बदन में बिज़ली चलाते समय उसके तड़पने का दृश्य मैंने देखा है। ऐसी घड़ी में मेरे मन में दर्द उठा है। उस दिन मोहिउद्दीन थरथरा उठा तो मैं निर्विकार खड़ा उसे देखता रहा।

"मेरी छाती फट रही है। यहां उंगली तक नहीं पड़ सकती।"

अपना बड़ा कुर्ता एक तरफ हटाकर छाती की ओर इशारा करके उसने कहा तो उस बालक की आंखों में आसू भर आए। उसने मुंह हाथ से दबाए रखा, तब भी रुलाई रुक नहीं सकी।

मैं उठकर कमरे में चहलकदमी करता रहा। मुझे नहीं सूझ रहा था कि उससे क्या कहा जाए या उसे कैसे मनाया जाए। मैं एकदम घबरा उठा। मैं आश्चर्य से देख रहा था कि मोहिउद्दीन की छाती में क्या हुआ!

समय सरक रहा था। वह कितनी देर वहां पड़ा रहेगा? कुछ किया जा सकता है तो दिन निकलने पर ही। लेकिन, तब तक...

वह समझ गया कि मेरे मन में क्या ख्याल है। वह बोला—"मैं यहीं पड़ा रहूंगा।"

मुझे रसोईघर से बाथरूम की ओर जाने के गलियारे में उस जगह की याद आई जहां मोहिउद्दीन रात को सोया करता था। वही क्यों, होटल के अधिकांश नौकर वहीं लेटते थे। कुछ लोग खाली सीमेंट के फर्श पर लेटते तो कुछ लोग लकड़ी के तख्तों पर। थोड़ी-सी बूंदा-बांदी हो तो बस, पानी जमा हो जाएगा। बारिश कम होने पर भी रात को जरूर ओस पड़ती थी।

शायद पिछले तीनों दिन मोहिउद्दीन ने इसी जगह रात बिताई होगी। मैंने उसे फिर से वहीं भेजने को सोचा था।

मोहिउद्दीन खाट के पायताने पर सिमटा पड़ा था। सुबह धोबी के आने पर मैंने धुलाई के कपड़े धोबी को गिनकर दिए। उस बालक की हालत देखकर मुझे लगा कि वह भी एक मैला कपड़ा है।

मैंने सोचा—अगर मेरा कोई छोटा भाई होता तो! यदि मोहिउद्दीन का-सा नसीब उसका होता तो क्या मैं सब्र करता? नहीं। क्या मेरी मां सब्र कर सकेगी? नहीं, कोई सब्र नहीं करेगा। गांव से सैकड़ों मील दूर आकर मुसीबतों में फंसना! सो भी इतनी छोटी उम्र में!

मैंने मोहिउद्दीन को दोनों हाथों से सहारा देकर अपने बिस्तर पर लिटाया। वह कराहता बड़बड़ाता रहा। उसका शरीर तवे-सा जल रहा है। मन भय से चौंक उठा। किस

रोग की शुरुआत होगी? छाती का दर्द व ज्वर?

बड़ी मुश्किल से उसने पूछा—"मैं जाऊं तो क्या उम्मा डांटेगी?"

उस प्रश्न ने मुझे सन्न कर दिया। मैं कुछ नहीं कह सका। लगा कि बरफ का ढेला गले में अटक रहा है। और कितने ही सवाल पूछ सकता था! मोहिउद्दीन ने वही प्रश्न पूछा।

उसके चेहरे की तरफ आंख फेरे बिना मैंने किसी तरह बताया—"चुपचाप लेटे रहो। सवेरा होने दो।"

मगर वह बालक ऐसी दुनिया में था जिसमें रोशनी की लकीर तक नहीं थी। उसे दिन खुलने के विषय में कोई अहसास नहीं था।

इसलिए उसने फिर से कहा— "मैं उम्मा को देखना चाहता हूं।"

"मैंने उम्मा को लिखा है—कल जवाब आएगा। तब तक चुप लेटे रहो।"

उसने सुना या नहीं? किसे पता? फिर कुछ पूछा नहीं।

मुझे फूट-फूटकर रोने की इच्छा हुई। मैं उस बालक को धोखा दे रहा था।

अनजाने मेरा हाथ मेज की दराज की तरफ बढ़ा। उसमें एक पुराना पोस्टकार्ड था। थोड़ी देर झिझकते रहने के बाद मैंने वह कार्ड निकाला। करीब एक माह पहले मोहिउद्दीन की उम्मा ने मेरे नाम वह कार्ड भेजा था। मैंने उसे पढ़ा—

"बिसमिल्लाह! रहमदिल खुदा की मेहरबानी से अपने प्यारे लाल मोहिउद्दीन को...खैरियत से होगे ही। गांव में दिन खराब हैं। तुम्हारे बाप बिल्कुल नहीं आते। बड़ी बुरी हालत है। जो भी खाने-पीने को मिले, उसे लेते हुए कहीं भी जिंदा रहो, यही मां के लिए खुशी की बात होगी...और..."

मैंने मोहिउद्दीन को वह खत नहीं दिखाया था। उसका यकीन था कि उम्मा यहां की हालत जानने पर तुरंत गांव बुला लेगी। ऐसी हालत में उसे वह खत मैं कैसे दिखाता? मैं उसकी मां की हालत से अच्छी तरह वाकिफ हूं। वहां जोड़ों पर लात-घूंसे तो नहीं पड़ेंगे, पर भूखा रहना पड़ेगा।

मेरी इच्छा थी कि जल्द-से-जल्द मोहिउद्दीन को इस होटल से छुड़ाकर और किसी नौकरी में लगाऊं। कितने ही घरवाले एक छोटे बालक को घर की नौकरी के लिए चाहते होंगे! मौके की ताक में था।

किसे पता था कि इस बीच वह बीमार पड़ेगा!

रात की तनहाई में सारी दुनिया आराम कर रही थी। सिर्फ मेरी नींद टूट गई थी। मेरा मन बेचैन रहा। कितनी देर तक यों रहता? मैंने सोचा — बाहर जाकर एक डाक्टर को ले आऊं? मैं मोहिउद्दीन के फेफड़ों से सांस के निकलने की आवाज सुन रहा था। उस बालक की नाक किनारे पड़ी मछली की तरह सिमटती-फूलती थी। उस पर हथेली रखते-रखते मैं डर गया। उसने कहा तो था कि छाती फट रही है।

मैंने अपने को विश्वास दिलाया कि मोहिउद्दीन को अकेले छोड़कर डाक्टर को बुलाने

जाने में खतरा है। और तो और, ऐसे बेवक्त आएगा भी कौन? इसलिए सवेरे किसी को ले आने का निश्चय किया।

मैं डरपोक था।

मोहिउद्दीन को खांसी आई। उसने बलगम थूका। मैंने बिस्तर की सफेद चादर पर खून-लगा बलगम स्पष्ट देखा।

थोड़ी देर बिना हिले पड़े रहने के बाद वह फिर से खांसने लगा। उसका हर अंग जोर से हिल रहा था।

मेरी आंखों में पहली बार आंसू भर आए। फिर कुछ भी सोचे बिना मैं बाहर चला आया। मुझे भी अंदाज नहीं था कि क्या करूंगा। जीने की सीढ़ियां उतरने की आहट ने मुझे और चकराया। कोई दूर से मानो पुकारकर कह रहा था— 'तू बडा निठुर है। तेरे दिल नहीं है।'

होटल के मैनेजर के कमरे के सामने जाकर दरवाजा खटखटाते हुए पुकारा- ''मिस्टर कोया!''

उसके दरवाजा खोलने तक मैं खटखटाता रहा।

कोया कपड़े पहनकर बाहर आया तो मैंने कहा— ''मोहिउद्दीन की तबीयत बहुत खराब है।''

''ओह, ऐसा?''

उसने बड़ी लापरवाही से पूछा, मानो कुछ नहीं हुआ हो।

''डाक्टर को बुलाकर अभी न दिखाया तो हालत बड़ी नाजुक हो जाएगी।''

''हूं...''

''कुछ-न-कुछ जल्दी करना है।''

''सब करूंगा। दिन निकलने दीजिए। तभी देखेंगे?''

कहते हुए मैनेजर फीकी हंसी हंस पड़ा। साफ था कि वह किसी तरह मुझसे पीछा छुड़ाना चाहता था।

मेरे मुंह पर उसने दरवाजा बंद किया।

थोड़ी देर मैं वहीं खड़ा रहा। मेरा दिल सूना-सूना था। कोया से नफरत तक नहीं सूझी।

भारी दिल से मैं कमरे में लौटा। आसमान के तारे मेरी तरफ देख उपहास कर रहे थे। वे भी कोया के सोना-मढ़े दांतों के समान फीके थे।

बड़े तेज दर्द की भट्ठी में झुलसते बालक को देखकर मैं यकीन नहीं कर सका कि करीब चार माह पहले इसी मोहिउद्दीन को मैं ले आया था। तब की और अब की सूरत में इतना अंतर था। जिस बालक के कण-कण में जीवन का उल्लास उमड़ रहा था वह आज चेतनाहीन-स्फूर्तिहीन हमारे सामने पड़ा था।

मुझे वह दृश्य याद आया जब उसकी मां ने बालक को मेरे सुपुर्द किया था। उसके घर का छप्पर वक्त पर पत्तों से नहीं छाया गया थी। बाड़ के पास फातिमा बेटे मोहिउद्दीन

को लिए खड़ी थी। उसने अपने बेटे को मुझे सौंपा तो झिझक उठी, बोली—"आप इसके लिए कोई रास्ता निकालें। बेटा, खुदा आपका भला करेगा।"

वह कमबख्त लड़का तब हंस पड़ा। देखकर मुझे गुस्सा जरूर आया। मगर मन को समझाया—बेचारा लड़का शायद मंदबुद्धि हो।

उस बालक ने आगे भी कई बार ऐसा अविवेकी व्यवहार किया। मैंने उसे कठोरता से डांटा भी। एकाध बार थप्पड़ भी मारा। मैंने एक बात की याद नहीं रखी कि मोहिउद्दीन की उम्र अभी इस लायक नहीं हुई है कि लोगों के बीच के अंतर को समझ सकें।

उसका दिल पूरा-पूरा मैराशि [मद्रास] में था। वह कितनी ही बातें जानना चाहता था। वह सबसे पहले जानना चाहता था कि क्या मद्रास में भी हाट लगती है? बीच-बीच में वह एक सवाल दुहराता रहता था—"क्या मद्रास हमारे गांव-जैसा है?"

रेलगाड़ी के दोनों ओर के नजारे देखते, सवाल करते थक गया तो लड़का किसी का छोड़ा हुआ सिगरेट का पैकैट लेकर खेलने लगा। तभी मैंने पहली बार मोहिउद्दीन पर ध्यान दिया। उसने चारखानेवाला नया तट्टम (कपड़ा) पहना था तो भी उसका कुर्ता पुराना व फटा था, जो उसके बाप की उम्र के आदमी के लायक था। खुली नीली आंखें और गेंहुए रंग का वह बालक मुश्किल से बारह बरस का था। फिर भी वह उम्र के हिसाब से भी ज्यादा बड़ा हो गया था। दूध पीकर गदराए सांढ़ का बाछा था वह। मन में अदम्य उत्साह-उंमगें भरी हुई थीं।

मुझे मजाक सूझा। उससे मैंने पूछा— "तुम कुरान सीखने गए थे?"

मोहिउद्दीन ने उसके उत्तर में एक गुड़गुड़ाती आवाज गले से सुनाई। फातिमा ने खुद मुझसे कहा था कि उसे लिखना-पढ़ना नहीं आता।

"क्या तेरा बाप अब भी आता है?"

उसने सिगरेट का खाली पैकेट नीचे रख मेरी तरफ देखा। चेहरा उदास था। बालक होने के बावजूद उसने वह सवाल पसंद नहीं किया। यह जाहिर था। भर्राई आवाज में उसने कहा—"बाप ने और निकाह किया है न!"

मुझे लगा कि उससे वह सवाल पूछना नहीं चाहिए था। मैंने सोचा कि उसके भी एक दिल है जो दर्द से दुखता है।

मोहिउद्दीन की आंखों में आनंद की झलक थी। वह एक अस्पष्ट भविष्य का सपना देख रहा था— "हम भी बड़े होकर सिंगापुर जाएंगे।"

"उसके लिए जरूरी पैसे?"

"मद्रास में मजदूरी मिलेगी न?"

मोहिउद्दीन को इसमें शक बिल्कुल नहीं था।

हमारे घर से तीन मील दूरी पर मोहिउद्दीन और उसकी उम्मा पहले रहते थे। उसके बाद वे इधर आ गए। छोटी उम्र से मैं गांव के बाहर ही रहा। इसलिए फातिमा की खबरें अधिक नहीं जानता था। पिछले हफ्ते घर जाने पर ही मैंने पहली बार उसे देखा। वह अपने

बेटे को मद्रास में कोई काम दिलाने आई थी। आंसू बहाती कांपती आवाज में उसने बहुत-सी शिकायतें व विनती की। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। फातिमा के चले जाने पर मेरी बड़ी दीदी ने कहा— "बहुत अच्छी हालत में रहे लोग हैं। ऐसी तकलीफ के लायक नहीं हैं।"

फातिमा के मोहिउद्दीन से छोटे और भी दो लड़के थे। तीन संतानों का बाप बनने के बाद फातिमा के शौहर ने दूसरी शादी की। फातिमा के कोई भाई नहीं था। इसलिए उसने अब ऐसी औरत से शादी की जिसके भाई लोग थे। सिंगापुर से आए सालों ने बहनोई को रेशमी कमीज, लुंगी, टार्च वगैरह ला दिए। वह उन सबसे सज-धजकर नया दूल्हा बन इठलाता फिर रहा था, पर फातिमा और बच्चों की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देता था।

वह औरत पकौड़े बनाकर और मुर्गी पालकर बच्चों की परवरिश कर रही थी। यह कहानी सुनकर मुझे हमदर्दी हुई। मोहिउद्दीन की उम्र स्कूल में पढ़ने-खेलने की है। और कोई मां होती तो ऐसे बालक को नौकरी की खोज में इतनी दूर मद्रास न भेजती।

मगर वह मां कर भी क्या सकती थी? और क्या करती? फातिमा बच्चे को मछली के धंधे में लगाने को तैयार थी। लेकिन बालक में उसकी शारीरिक शक्ति हो, तभी न? हथकरघों के कारखाने भेजती! पर सब-के-सब बंद हैं। फिर बीड़ी का धंधा है।... उसके लिए...

सब में कोई-न-कोई अड़चन आड़े आती थी।

फातिमा खुद दो-तीन बार आकर मुझसे मिली। मैं कोई मदद करना चाहता था। पर मद्रास में उसे कौन-सा काम मिले? "क्या किसी होटल में उसे नहीं रखेंगे, बेटे? हमारे लोग बहुत होंगे न!"

बात ठीक थी। ऐसे होटल कहां होंगे जिन्हें छोकरों की जरूरत नहीं। याद आया—कोया ने मुझसे कहा था कि ईमानदार लड़के इन दिनों बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। मेरे कहने पर शायद कोया राजी हो जाए। मैं दो साल से उसी के होटल में ठहरा हूं।

फातिमा ने जब बेटे को मेरे साथ भेजा तब मैंने कोई बड़ा भरोसा नहीं दिया। कहा था कि जल्दी कोई नौकरी न मिलने पर गांव लौटने वाले किसी के साथ मोहिउद्दीन को भेज दूंगा। मगर फातिमा को नौकरी के विषय में बिल्कुल शक नहीं था।

"ऐसी हालत नहीं होगी, बेटा! क्या किस्मत इतनी बेरहम होगी?"

कोया से मैंने कहा—"वह मोहिउद्दीन को नौकरी देगा तो बड़ा पुण्य पाएगा। उसके हाथ से एक परिवार का उद्धार होगा। वेतन के विषय में कोई हठ नहीं। जो भी देगा, ले लेगा। होटल में अकेले मोहिउद्दीन ही नहीं है। सब को जैसा देते हो वैसा इस बालक को भी देना। बस।"

मैंने कोया को विश्वास दिलाया कि मोहिउद्दीन की ईमानदारी के विषय में डरने की कोई बात नहीं।

"जब आप-जैसे लोग कहें तब क्या करूं? वह यहीं रहे। तो..."

कोया यही महसूस करा रहा था कि वह बड़ा अहसान कर रहा है। उसने मोहिउद्दीन से कहा— "अरे, तू कोई गलती या शरारत न करना। सुना?"

मोहिउद्दीन हमारे सामने यों खड़ा था मानो एक नाटक का मजा ले रहा हो।

उस दिन से मोहिउद्दीन कोया के होटल का कर्मचारी हो गया।

मुझे ठीक पता नहीं था कि मोहिउद्दीन क्या-क्या काम करता है। कोया के साथ बाजार जाना, मेज की सफाई करना, जूठे बर्तन मांजना, सुराही में पानी भरकर कमरे में रखना आदि उसके काम में शामिल थे। उस मामले में कभी मैंने दखल नहीं दिया। तो भी कभी-कभी मुझे महसूस होता था कि उस बालक की ताकत से बढ़कर बेहद भारी बोझ उठवाया जा रहा है। तब मैंने मन को समझाया—परवाह नहीं। लड़कों को थोड़ी बहुत तकलीफ झेलकर ही बड़ा बनना चाहिए। तभी वे आगे अच्छे बनेंगे। जो भी हो, उसे खाने-पीने को तो मिलता है।

मगर वह बालक सूखता जा रहा था।

मेरी बगल के कमरे में ठहरे तलश्शरीवाले नंबियारजी ने मुझसे पूछा—"आप जिस लड़के को ले आए वह थप्पड़ खाते-खाते कैसा हो गया है! मैनेजर से क्यों नहीं कहते?"

मैं भी देख रहा था। मगर क्या कहूं? कुछ कह भी डालूं तो उसकी सजा कौन भुगतेगा? मोहिउद्दीन ही।

तब भी उसका शरीर ही सूखा था। जोश ज्यों का त्यों था। मुझे यकीन था कि उसकी उमंग व साहसी प्रकृति उसके खून में है।

मुझसे भूल हो गई। उस उम्र के सारे लड़के शायद उसी तरह के होंगे। उनका मन शायद थकना नहीं जानता।

मेरे कमरे में आने पर वह कभी चुप न रहता। मेरी घड़ी व पेन से उसकी उंगलियां खेलतीं। खड़े होने की अपेक्षा मेरी गद्देवाली कुर्सी पर बैठना उसे कहीं अधिक पसंद था। बैठकर मेज पर पड़ी किताबें उलट-पलटकर देखता।

कभी-कभी मुझे गुस्सा आता। पर गुस्से से क्या लाभ। मैं कुछ कहता तो वह अपनी नीली आंखें खूब खोलकर सिर जरा टेढ़ा किए शरारती हंसी हंसते हुए पूछता—"हम एक गांव के हैं न?" मद्रास आने के बाद उसके बाल शायद ही कभी काटे गए हों।

मगर मुझी से क्यों, मोहिउद्दीन सब से यही सवाल पूछा करता था। फिर भी वे उसे न पीटते, न डांटते।

मुस्तफा ने एक बार कहा—वह छोकरा सिरफिरा शैतान है। फिर भी उससे कुछ कहने को जी नहीं करता। यही ताज्जुब की बात है! कोई जादू-सा लगता है।

पहला वेतन पाने पर मोहिउद्दीन ने मेरे हाथ में पैसे लाकर दिए। पांच रुपए थे। मैंने पूछा— "अरे, यह क्या? बस इतना ही?"

उसने जमीन की ओर नजर डाले हुए बताया—"कह रहे थे कि गिलास तोड़ने के बदले में उन्हें पैसे देना चाहिए।"

उस दिन वह कुर्सी पर नहीं बैठा। कलम नहीं ली। उसका मन कुछ और बातें सोच रहा था। मोहिउद्दीन उसके पहले कभी इतना दबा-सिमटा, हाथ-मुंह बिना हिलाए मेरे सामने खड़ा नहीं रहा था।

मैंने जब चले जाने को कहा तब कुछ कहे बिना वह मेरे कमरे से निकल गया। मेरे सामने खड़ा होकर तो रोया नहीं, लेकिन गलियारे में जाकर सब की आंख बचाकर वह जरूर रोया होगा।

दूसरे दिन सवेरे एक और घटना हुई।

मैं बड़े सवेरे बाथरूम से लौट रहा था। गलियारे में एक जगह मोहिउद्दीन सिमटा पड़ा था, उसे गौर से मैंने देखा। उसके बदन से कपड़ा हट गया था। उस बालक की गोरी पिंडलियों पर मार पड़ने का नीला दाग था।

मैं जब वह दृश्य देखता खड़ा था, तब कोया का साला एक गिलास में पानी लिए आया। उसने वहां सोए नौकरों पर पानी छिड़का और अधिकांश लोगों को घसीटता ले चला। मोहिउद्दीन भी सजा से नहीं छूट सका।

उस नीच ने मेरे सामने यह सब किया। मैं देखकर भी अनदेखा कर आगे चला आया। मेरे स्वाभिमान को ठेस लगी थी।

जीने के नीचे मैं क्षण-भर खड़ा हो कान देकर सुन रहा था। कोया के साले की भद्दी गालियां उषाकाल की पवित्रता को कलंकित कर रही थीं। लौटकर उसे थप्पड़ मारने की इच्छा तो हुई, फिर भी मैंने वैसा नहीं किया। अपनी इज्जत का ख्याल था। मैं एक हद तक ही बढ़ सकता था।

उस दिन शाम को मैं कोया से मिला। मैं मोहिउद्दीन की बात करने गया था। सवेरे की घटना मेरे मन में आग बनकर धधक रही थी। फिर भी कोया की कठोरता देखकर मैं हिल गया। डगमगाया। मैंने कहा—"मोहिउद्दीन बोल रहा था कि उसे सिर्फ पांच रुपए दिए।"

कोया ने बीच में दखल देते हुए कहा—"बहुत कम हो गया, है न?"

"मगर.."

"आप कुछ न कहें। आप भी जानते हैं कि मुझे उसकी बड़ी जरूरत नहीं थी। सोचा कि कुछ मदद हो जाए।"

निराश मैं कमरे में लौटा तो मोहिउद्दीन वहां मेरी प्रतीक्षा में खड़ा था। उसके हाथ में एक पोस्टकार्ड था।

"मैं जा रहा हूं। आप उम्मा को लिखिए।"

मेरे सामने कार्ड रखकर उसने कहा। उसकी आवाज गले में अटकते-खटकते धीरे से बाहर आती-सी लगी।

मैंने उसे ध्यान से देखा। ओंठ की बाईं कोर जोर से दबाए दोनों हाथ एक-दूसरे से मलते हुए वह खड़ा था।

मैंने मोहिउद्दीन से पूछा—"क्या तुम्हें यहां कोई परेशानी है?"

मोहिउद्दीन चुप। मुझे डर लग रहा था कि वह रो पड़ेगा।

"अच्छा, तुम जाओ! मैं लिखूंगा।"

वह चला गया।

मैं झिझकता रहा कि फातिमा को चिट्ठी लिखूं कि नहीं। मोहिउद्दीन को साथ भेजते समय उस स्त्री को बताई बातें मुझे याद आईं।

वहां बिना छाए छप्पर की झोंपड़ी! भूख और गैर-जिम्मेदार बाप।

यहां? कोया। कोया का साला, गलियारे की नींद। बड़े सवेरे की सजा।...

मैं दोनों ही हालतों को जानता था। मुझे नफरत होने लगी— सबसे।

'हो कुछ भी। मैं कुछ नहीं कर सकता। जाना हो तो जाए।' मैंने आपने-आप से कहा।

मैंने फातिमा को चिट्ठी लिखी कि मोहिउद्दीन को यहां बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा है और वह गांव लौटना चाहता है। मगर उसका जो जवाब आया वह मोहिउद्दीन को नहीं दिखाया। उस स्त्री ने लिखा था कि चाहे और कोई लाभ हो न हो, भूखा मरना तो नहीं पड़ेगा।

मोहिउद्दीन मेरे सामने जीवन व मृत्यु के बीच निश्चेष्ट पड़ा था। मुझे वे सारी बातें याद आईं। वह बालक इस विशाल संसार में आनंद पाने के लिए आया था। उसकी उम्र सबसे अधिक प्यार पाने लायक थी। वह हर किसी से लिपट जाना चाहता था। सभी से वह कहता— "हम एक गांव के हैं न!"

मगर हुआ क्या?

वह नन्हा बिरवा सूख रहा है।

मैंने टेबल लाइट की शेड मोहिउद्दीन की तरफ कर दी। उस प्रकाश में उसके मुंह की तरफ देखने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। अपराध-चेतना ने मेरे दिल में जो गहरा घाव लगाया था उससे खून रिसने लगा था। बड़े सवेरे मेरी आंखें कुछ झपक गईं। जागा तो दिन निकल आया था।

मोहिउद्दीन पहले की तरह पड़ा था। सांस की गति और तेज हो चली थी। उसकी आंखों की पलकें बंद नहीं थीं। कबूतरों की गुटरगूं की तरह उसके गले से बीच-बीच में घर्र-घर्र की आवाज उठ रही थी। मोहिउद्दीन को अकेले छोड़कर बाहर निकलने में मुझे संकोच तो था, परंतु और कोई चारा भी नहीं था। मैंने कोया के बारे में पूछा। वह न कमरे में था, न काउंटर पर। उसकी प्रतीक्षा किए बिना, बूंदा-बांदी पर ध्यान दिए बिना मैं डाक्टर के घर की ओर चल पड़ा। उस समय मेरे दिल में सिर्फ मोहिउद्दीन के लिए जगह थी। मैंने मोहिउद्दीन के वेतन या फातिमा की समस्याओं पर कुछ नहीं सोचा। मेरी प्रार्थना इतनी ही थी कि किसी तरह मोहिउद्दीन ठीक हो जाए।

डाक्टर घर पर थे।

उन्हें लेकर मैं होटल पहुंचा तो मोहिउद्दीन वैसे ही पड़ा था। डाक्टर ने उसकी नब्ज देखी तो वह न कराहा,न हिचका। छाती पर हाथ रखा तो तड़प उठा। उस समय उसका चेहरा बड़ा भद्दा लग रहा था।

खून-लगे बलगम का दाग जांचने के बाद डाक्टर चिंता में खो गए।

मैं अधीर प्रतीक्षा कर रहा था। वे क्या कहेंगे ?

डाक्टर ने अचानक पूछा—"ठंड लगी है न ?"

मैं अपलक ताकता रह गया...

"कुछ पहले दिखा सकते थे।"

उनका हर शब्द तराजू से तौलकर निकले शब्दों के समान था।

"कितने दिनों से है दर्द ?"

"छोकरे ने कल ही तो कहा। हरामी!"

कोया ने ही यह कहा। मुझे तभी पता लगा कि कोया और उसके कुछ दोस्त वहां खड़े हैं।

"किसी को साथ भेजें तो दवा भेज दूंगा। घबराने की कोई बात नहीं।"

वे इतना कहकर जाने लगे तो मैंने प्रश्न किया— "सर, रोग क्या है ?"

"ओफ, न्यूमोनिया की एक किस्म समझिए।"

मैंने जो राशि दी उससे सिर्फ पांच रुपये लेकर जेब में डाले और वे चले गए।

मैं बिस्तर पर एक तरफ बैठ गया। मेरे मन में अकारण एक भय उठा। लंबे पसरे हुए उस बालक को देखकर मुझे महसूस हुआ कि मोहिउद्दीन मरने जा रहा है। वरना वह डाक्टर मेरी दी हुई पूरी फीस क्यों नहीं ले रहा था ?

मेरे ख्याल टूटते-बिखरते जा रहे थे। मैं कुछ सोच नहीं पाया।

मैंने कसम खाई कि कुछ भी हो, कमरे से नहीं निकलूंगा।

कोया, बालक के लिए अपने किए उपकारों पर लंबी तकरीर देने लगा। मद्रास में भटकते बालक को उसी ने बुलाकर काम दिया। फिर भी उसने वैसी नमकहरामी की थी। बीमार पड़ने पर भी वह होटल में ही सिमटा पड़ा था। क्यों अस्पताल नहीं जा सकता था ? होटल में पड़े-पड़े वह मर जाए तो...

मैं अधिक समय तक उसकी बातें सब्र से नहीं सुन सका। मैंने उसके पास जाकर दबी आवाज में दांत पीसते हुए कहा—"भले आदमी ! कमरे से चला जा।"

उस वक्त उसने मेरी भीगी आंखों में पिशाच की मुस्कुराहट देखी होगी।

कमरे में हम दोनों शेष रहे—मोहिउद्दीन और मैं।

मेरे साथ वहां पहली बार आते समय मोहिउद्दीन कितना हंसमुख व प्यारा लड़का था। तब किसी ने कल्पना तक नहीं की होगी कि वह बालक इस हालत में पहुंचेगा। परंतु उसे क्या हो गया ? कुछ नहीं। अस्त होने के पहले के सूरज से निकली किरण की तरह...

बारिश की बूंदें छत पर और फर्श पर नियमित लय-ताल से गिर रही थीं। मोहिउद्दीन

ने बहुत ही धीमी आवाज से कुछ कहा। मेरे हृदय को मानो कोई कांटे से खींच रहा था।

मैं बिस्तर पर घुटने टेक सिर झुकाए बैठा रहा!

आंखें बंद किए हुए उसने पुकारा—"उम्मा!"

गड़बड़ के कारण कुछ कह नहीं सका।

उसकी दुबली बांहें शून्य में किसी को ढूंढ़ रही थीं।

उसने उन हाथों से मुझे कसकर पकड़ लिया और फिर से धीमी आवाज में पुकारा—"उम्मा!"

उस घड़ी स्वार्थ के ख्याल की सारी गंदगियां मन से धुल गईं।

"उम्मा, हमें कहीं नहीं जाना!"

"हम यहीं रहेंगे।"

"क्या उम्मा डांटेगी?"

"मैं नहीं जाऊंगा।"

उसने पकड़ ढीली कर दी। उस चेहरे पर उस समय सपने की-सी मुस्कुराहट थी।

मैंने खुली खिड़की से बाहर देखा। बारिश में भीगे नीम के पेड़ से हवा आ रही थी। पत्ते झड़ रहे थे।

सड़क पर आदमी, मोटर और ट्राम का शोरगुल था।

वह हथेली ठंडी हो गई। मेरे मन में कोई घबराहट नहीं हुई। मैंने अच्छी तरह स्पर्श करके देखा। हाथ ही नहीं, पूरा शरीर ठंडा हो गया था।

कमरे में सिर्फ मैं था— नहीं—मोहिउद्दीन और मैं।

उम्मर एक कार्ड मेज पर रखकर भाग गया।

'बिसमिल्लाह! प्यारे मोहिउद्दीन की जानकारी के लिए तुम्हारी उम्मा लिख रही है। तुम्हारी कोई खबर न मिलने से मैं बहुत उदास हूं। आशा है, तुम मजे में हो! तुम आ जाओ। यही बेहतर है। भूख में भी साथ तो रह सकते हैं!'

मैंने पेटी से धुली चादर निकालकर मोहिउद्दीन को ओढ़ा दी।

मेज पर से दोनों कार्ड लेकर मैं देर तक सोचता रहा। दोनों उसकी उम्मा के थे।

जब वह जिंदा था तब मैंने उसे पढ़कर सुनाने का प्रेम या शराफत नहीं दिखाई। न मैं उसे समझ सका।

इसलिए जब वह मर गया तब मैंने दोनों कार्ड उसके सिरहाने रखे—अपने मन की शांति के लिए। मगर मुझे शांति नहीं मिली।

कांपते हाथ से मैंने उन्हें उठाकर बाहर फेंक दिया। तब वह कमरा और गली ही नहीं, पूरा नगर एकदम खामोशी में डूबा था।

कंचा

वह नीम के पेड़ों की घनी छांव से होता हुआ सियार की कहानी का मजा लेता आ रहा था। हिलते-डुलते उसका बस्ता दोनों तरफ झूमता खनकता था। स्लेट, कभी छोटी शीशी से टकराती तो कभी पेंसिल से। यों वे सब उस बस्ते के अंदर टकरा रहे थे। मगर वह न कुछ सुन रहा था, न देख रहा था। उसका पूरा ध्यान कहानी पर केंद्रित था। कैसी मजेदार कहानी! कौए और सियार की।

सियार कौए से बोला— ''प्यारे कौए, एक गाना, गाओ न, तुम्हारा गाना सुनने के लिए तरस रहा हूं।''

कौए ने गाने के लिए मुंह खोला तो रोटी का टुकड़ा जमीन पर गिर पड़ा। सियार उसे उठाकर नौ दो ग्यारह हो गया।

वह जोर से हंसा।

बुद्धू कौआ।

वह चलते-चलते दुकान के सामने पहुंचा। वहां अलमारी में कांच के बड़े बड़े जार कतार में रखे थे। उनमें चाकलेट, पिपरमिंट और बिस्कुट थे। उसकी नजर उनमें किसी पर नहीं पड़ी। क्यों देखे ? उसके पिताजी उसे ये चीजें बराबर ला देते हैं।

फिर भी एक नये जार ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। वह कंधे से लटकते बस्ते का फीता एक तरफ हटाकर, उस जार के सामने खड़ा टुकुर-टुकुर ताकता रहा। नया-नया लाकर रखा गया है। उससे पहले उसने वह चीज यहां नहीं देखी है।

पूरे जार में कंचे हैं। हरी लकीरवाले बढ़िया सफेद गोल कंचे। बड़े आंवले जैसे। कितने खूबसूरत हैं! अब तक ये कहां थे ? शायद दुकान के अंदर। अब दुकानदार ने उसे दिखाने के लिए बाहर रखा होगा।

उसके देखते-देखते जार बड़ा होने लगा। वह आसमान-सा बड़ा हो गया तो वह भी उसके भीतर आ गया। वहां और कोई लड़का तो नहीं था। फिर भी उसे वही पसंद था। छोटी बहन के हमेशा के लिए चले जाने के बाद वह अकेले ही खेलता था।

वह कंचे चारों तरफ बिखेरता मजे में खेलता रहा।

तभी एक आवाज आई।

''लड़के, तू उस जार को नीचे गिरा देगा।''

वह चौंक उठा।

जार अब छोटा बनता जा रहा था। छोटे जार में हरी लकीरवाले सफेद गोल कंचे। छोटे आंवले जैसे।

सिर्फ दो जने वहां हैं। वह और बूढ़ा दुकानदार। दुकानदार के चेहरे पर कुछ

चिड़चिड़ाहट थी।

"मैंने कहा न? जो चाहते हो वह मैं निकालकर दूं।"

वह उदास हो अलग खड़ा रहा।

"क्या कंचा चाहिए?"

दुकानदार ने जार का ढक्कन खोलना शुरू किया।

उसने निषेध में सिर हिलाया।

"तो फिर?"

सवाल खूब रहा। क्या उसे कंचा चाहिए? क्या चाहिए? उसे खुद मालूम नहीं है। जो भी हो, उसने कंचे को छूकर देखा। जार को छूने पर कंचे का स्पर्श करने का अहसास हुआ। अगर वह चाहता तो कंचा ले सकता था।

"लिया होता तो?"

स्कूल की घंटी सुनकर वह बस्ता थामे हुए दौड़ पड़ा।

देर से पहुंचनेवाले लड़कों को पीछे बैठना पड़ता है। उस दिन वही सबके बाद पहुंचा था। इसलिए वह चुपचाप पीछे की बेंच पर बैठ गया।

सब अपनी-अपनी जगह पर हैं। रामन अगली बेंच पर है। वह रोज समय पर आता है। तीसरी बेंच के आखिर में मल्लिका है। मल्लिका के बाद अम्मु बैठी है।

जार्ज दिखाई नहीं पड़ता।

लड़कों के बीच जार्ज ही सबसे अच्छा कंचे का खिलाड़ी है। कितना भी बड़ा लड़का उसके साथ खेले, जार्ज से मात खाएगा। हारने पर यों ही विदा नहीं हो सकता। हारे हुए को अपनी बंद मुट्ठी जमीन पर रखना होगा। तब जार्ज कंचा चलाकर बंद मुट्ठी के जोड़ों की हड्डी तोड़ेगा।

जार्ज क्यों नहीं आया?

अरे हां, जार्ज को बुखार है न! उसे रामन ने यह सूचना दी थी। उसने मल्लिका को सब बताया था। जार्ज का घर रामन के घर के रास्ते में पड़ता है।

अप्पू कक्षा की तरफ ध्यान नहीं दे रहा है।

मास्टरजी!

उसने हड़बड़ी में पुस्तक खोलकर सामने रख ली। रेलगाड़ी का सबक था।

रेलगाड़ी...रेलगाड़ी। पृष्ठ सैंतीस। घर पर उसने यह पाठ पढ़ लिया है।

मास्टरजी बीच-बीच में बेंत से मेज ठोकते हुए ऊंची आवाज में कह रहे थे— "बच्चो! तुममें से कई ने रेलगाड़ी देखी होगी। उसे भाप की गाड़ी भी कहते हैं; क्योंकि उसका यंत्र भाप की शक्ति से ही चलता है। भाप का मतलब पानी से निकलती भाप से है। तुम लोगों के घरों के चूल्हे में भी...।"

अप्पू ने भी सोचा—रेलगाड़ी। उसने रेलगाड़ी देखी है। छुक-छुक... यही रेलगाड़ी है। वह भाप की भी गाड़ी है। भाप की गाड़ी का मतलब...।

मास्टरजी की आवाज अब कम ऊंची थी। वे रेलगाड़ी के हर एक हिस्से के बारे में समझा रहे थे।

''पानी रखने के लिए खास जगह है। इसे अंग्रेजी में बायलर कहते हैं। यह लोहे का बड़ा पीपा है।''

लोहे का एक बड़ा कांच का जार। उसमें हरी लकीरवाले सफेद गोल कंचे। बड़े आंवले जैसे। जार्ज जब अच्छा होकर आ जाएगा तब उससे कहेगा। उस समय जार्ज कितना खुश होगा। सिर्फ वे दोनों खेलेंगे। और किसी को साथ खेलने नहीं देंगे।

उसके चेहरे पर चॉक का टुकड़ा आ गिरा। अनुभव के कारण वह उठकर खड़ा हो गया। मास्टरजी गुस्से में हैं।

''अरे, तू उधर क्या कर रहा है?''

उसका दम घुट रहा था।

''बोल।''

वह खामोश खड़ा रहा।

''क्या नहीं बोलेगा?''

वे अप्पू के पास पहुंचे।

सारी कक्षा सांस रोके हुए उसी तरफ देख रहा है।

उसकी घबराहट बढ़ गई।

''मैं अभी किसके बारे में बता रहा था?''

कर्मठ मास्टरजी उस लड़के का चेहरा देखकर समझ गए कि उसके मन में और कुछ है। शायद उसने पाठ पर ध्यान दिया भी हो। अगर दिया है तो उसका जवाब उसके मन से बाहर ले आना है। इसी में उनकी सफलता है।

''हां, हां, बता। डरना मत।''

मास्टरजी ने देखा, अप्पू की जबान पर जवाब था।

''हां, हां...।''

वह कांपते हुए बोला— ''कंचा।''

''कंचा...।''

वे सकपका गए।

कक्षा में भूचाल आ गया।

''स्टैंड अप!'

मास्टर साहब की आंखों में चिनगारियां सुलग रही थीं।

अप्पू रोता हुआ बेंच पर चढ़ा।

पड़ोसी कक्षा की टीचर ने दरवाजे से झांककर देखा।

फिर सम्मिलित हंसी।

रोकने की पूरी कोशिश करने पर भी वह अपना दुःख रोक नहीं सका। सुबकता रहा।

रोते-रोते उसका दु:ख बढ़ता ही गया। सब उसकी तरफ देख-देखकर उसकी हंसी उड़ा रहे हैं। रामन, मल्लिका... सब।

बेंच पर खड़े-खड़े उसने सोचा, दिखा दूंगा सबको। जार्ज को आने दो। जार्ज जब आए...जार्ज के आने पर वह कंचे खरीदेगा। इनमें से किसी को वह खेलने नहीं बुलाएगा। कंचे को देख ये ललचाएंगे। इतना खूबसूरत कंचा है।

हरी लकीरवाले सफेद गोल कंचे। बड़े आंवले जैसे।

तब...

शक हुआ। कंचा मिले कैसे ? क्या मांगने पर दुकानदार देगा ? जार्ज को साथ लेकर पूछे तो, नहीं दे तो ?

''किसी को शक हो तो पूछ लो।''

मास्टरजी ने उस घंटे का सबक समाप्त किया।

''क्या किसी को कोई शक नहीं ?''

अप्पू की शंका अभी दूर नहीं हुई थी। वह सोच रहा था — क्या जार्ज को साथ ले चलने पर दुकानदार कंचा नहीं देगा ? अगर खरीदना ही पड़े तो कितने पैसे लगेंगे ?

रामन ने मास्टरजी से सवाल किया और उसे सवाल का जवाब मिला।

अम्मिणि ने शंका का समाधान कराया।

कई छात्रों ने यह दुहराया।

''अप्पू, क्या सोच रहे हो ?''

मास्टरजी ने पूछा।

''हूं, पूछ लो न ? शंका क्या है ?''

शंका जरूर है।

''क्या जार्ज को साथ ले चलने पर दुकानदार कंचे देगा ? नहीं तो कितने पैसे लगेंगे ? क्या पांच पैसे में मिलेगा, दस पैसे में ?''

''क्या सोच रहे हो ?''

''पैसे ?''

''क्या ?''

''कितने पैसे चाहिए ?''

''किसके लिए ?''

वह कुछ नहीं बोला।

हरी लकीरवाले सफेद गोल कंचे उसके सामने से फिसलते गए।

मास्टरजी ने पूछा।

''क्या रेलगाड़ी के लिए ?''

उसने सिर हिलाया।

''बेवकूफ! रेलगाड़ी को पैसे से खरीद नहीं सकते। अगर मिले भी तो उसे लेकर क्या

करेगा?"

वह खेलेगा। जार्ज के साथ खेलेगा।

रेलगाड़ी नहीं, कंचा।

चपरासी एक नोटिस लाया।

मास्टरजी ने कहा, "जो फीस लाए हैं, वे आफिस जाकर जमा कर दें।"

बहुत-से छात्र गए।

राजन ने जाते-जाते अप्पू के पैर में चिकोटी काट ली।

उसने पैर खींच लिया।

उसे याद आया। उसे भी फीस जमा करना है। पिताजी ने उसे डेढ़ रुपया इसके लिए दिया है।

उसने अपनी जेब टटोलकर देखा—

एक रुपये का नोट और पचास पैसे का सिक्का।

वह बेच से उतरा।

"किधर?"

मास्टरजी ने पूछा।

उसके कंठ से खुशी के बुलबुले उठे।

"फीस देना है।"

"फीस मत देना।" मास्टर ने कहा।

वह झिझकता रहा।

"ऑन दि बेंच।"

वह बेच पर चढ़कर रोने लगा।

"क्या भविष्य में कक्षा में ध्यान से पढ़ेगा?"

"ध्या...ध्यान दूंगा।"

"हूं...तो जाओ।"

वह दफ्तर गया।

दफ्तर में बड़ी भीड़ थी।

"बच्चो, एक-एक करके आओ।" क्लर्क बाबू बता रहे हैं।

"पहले मैं आया हूं।"

"हूं....मैं ही आया हूं।"

"मेरे बाकी पैसे?"

इस शोरगुल से अप्पू दूर खड़ा रहा।

रामन ने फीस जमा की। मल्लिका ने जमा की। अब थोड़े-से लड़के ही बचे हैं।

वह सोच रहा था— जार्ज को साथ लेकर चलूं तो देगा न? शायद दे। नहीं तो कितने पैसे लगेंगे? पांच पैसे-दस पैसे।

हरी लकीरोंवाले गोल सफेद कंचे।

घंटी बजने पर फीस जमा किए और बिना जमा किए हुए सभी बच्चे उधर से चले।

वह भी चला—मानो नींद से जागकर चल रहा हो।

"क्या सब फीस जमा कर चुके?"

कक्षा छोड़ने के पहले मास्टरजी ने पूछा। वह नहीं उठा।

शाम को थोड़ी देर इधर-उधर टहलता रहा। लड़के गीली मिट्टी में छोटे गड्ढे खोदकर कंचे खेल रहे थे। वह उनके पास नहीं गया।

फाटक के सींखचे थामे, उसने सड़क की तरफ देखा। वहां उस मोड़ पर दुकान है। दुकान में अलमारी। बाहर खड़े-खड़े छू सकेगा। अलमारी में शीशे के जार हैं। उनमें एक जार में पूरा ...

बस्ता कंधे पर लटकाए वह चलने लगा।

दुकान नजदीक आ रही है।

उसकी चाल की तेजी बढ़ी।

वह अलमारी के सामने खड़ा हो गया।

दुकानदार हंसा।

उसे मालूम हुआ कि दुकानदार उसके इंतजार में है।

वह भी हंसा।

"कंचा चाहिए, है न?"

उसने सिर हिलाया।

दुकानदार जार का ढक्कन जब खोलने लगा तब अप्पू ने पूछा— "अच्छे कंचे हैं न?"

"बढ़िया, फर्स्ट क्लास कंचे। तुम्हें कितने कंचे चाहिए?"

कितने कंचे चाहिए, कितने चाहिए, कितने? उसने जेब में हाथ डाला। एक रुपया और पचास पैसे हैं।

उसने वह निकालकर दिखाया।

दुकानदार चौंका— "इतने सारे पैसों के?"

"सबके।"

पहले कभी किसी लड़के ने इतनी बड़ी रकम से कंचे नहीं खरीदे थे।

"इतने कंचों की जरूरत क्या है?"

"जरूरत है।"

"कैसी?"

"वह मैं नहीं बताऊंगा।"

दुकानदार समझ गया। वह भी किसी जमाने में बच्चा रहा था। उसके साथी मिलकर खरीद रहे होंगे। यही उनके लिए खरीदने आया होगा।

वह कंचे खरीदने की बात जार्ज के सिवा और किसी को बताना नहीं चाहता था।

दुकानदार ने पूछा— "क्या तुम्हें कंचा खेलना आता है ?"

वह नहीं जानता था।

"तो फिर ?"

कैसे-कैसे सवाल पूछ रहा है। उसका धीरज जवाब दे रहा था।

उसने हाथ फैलाया।

"दे दो।"

दुकानदार हंस पड़ा।

वह भी हंस पड़ा।

कागज की पोटली छाती से चिपटाए वह नीम के पेड़ों की छांव में चलने लगा।

कंचे अब उसकी हथेली में हैं। जब चाहे बाहर निकाल ले।

उसने पोटली हिलाकर देखा।

वह हंस रहा था।

उसका जी चाहता था —काश! पूरा जार उसे मिल जाता। जार मिलता तो उसके छूने से ही कंचे को छूने का अहसास होता।

एकाएक उसे शक हुआ। क्या सब कंचों में लकीर होगी ?

उसने पोटली खोलकर देखने का निश्चय किया। बस्ता नीचे रखकर वह धीरे से पोटली खोलने लगा।

पोटली खुली और सारे कंचे बिखर गए। वे सड़क के बीचोंबीच पहुंच रहे हैं।

क्षण-भर सकपकाने के बाद वह उन्हें चुनने लगा। हथेली भर गई। वह चुने हुए कंचे कहां रखे ?

स्लेट और किताब बस्ते से बाहर रखने के बाद कंचे बस्ते में डालने लगा।

एक, दो, तीन, चार...

एक कार सड़क पर ब्रेक लगा रही थी।

वह उस वक्त भी कंचे चुनने में मग्न था।

ड्राइवर को इतना गुस्सा आया कि उस लड़के को कच्चा खा जाने की इच्छा हुई। उसने बाहर झांककर देखा, वह लड़का क्या कर रहा है ?"

हार्न की आवाज सुन कंचे चुनते अप्पू ने बीच में सिर उठाकर देखा। सामने एक मोटर है और उसके भीतर ड्राइवर। उसने सोचा—क्या कंचे उसे भी अच्छे लग रहे हैं ? शायद वह भी मजा ले रहा है।

एक कंचा उठाकर उसे दिखाया और हंसा—"बहुत अच्छा है न!"

ड्राइवर का गुस्सा हवा हो गया। वह हंस पड़ा।

बस्ता कंधे पर लटकाए, स्लेट, किताब, शीशी, पेंसिल—सब छाती से चिपटाए वह घर आया।

उसकी मां शाम की चाय तैयार कर उसकी राह देख रही थी।

बरामदे की बेंच पर स्लेट व किताबें फेंककर वह दौड़कर मां के गले लग गया।

उसके लौटने में देर होते देख मां घबराई हुई थी।

उसने बस्ता जोर से हिलाकर दिखाया।

''अरे यह क्या है?'' मां ने पूछा।

''मैं नहीं बताऊंगा।'' वह बोला।

''मुझसे नहीं कहेगा?''

''कहूंगा।''

''मां, आंखें बंद कर लो।''

मां ने आंखें बंद कर लीं।

उसने गिना, वन, टू, थ्री...

मां ने आंखें खोलकर देखा। बस्ते में कंचे-ही-कंचे थे। वह कुछ और हैरान हुई।

''इतने सारे कंचे कहां से लाया?''

''खरीदे हैं।''

''पैसे?''

पिताजी की तस्वीर की ओर इशारा करते हुए उसने कहा—''दोपहर को दिए थे न?''

मां ने दांतों तले उंगली दबाई। फीस के पैसे? इतने सारे कंचे काहे को लिए? आखिर खेलोगे किसके साथ। उस घर में सिर्फ वही है। उसके बाद एक मुन्नी हुई थी। उसकी छोटी बहन। मगर...

मां की पलकें भीग गईं।

उसकी मां रो रही है।

अप्पू नहीं जान सका कि मां क्यों रो रही है। क्या कंचा खरीदने से? ऐसा तो नहीं हो सकता। तो फिर?

उसकी आंखों के सामने बूढ़ा दुकानदार और कार का ड्राइवर खड़े-खड़े हंस रहे थे। वे सब पसंद करते हैं। सिर्फ मां को कंचे क्यों पंसद नहीं आए?

शायद कंचे अच्छे नहीं हैं।

बस्ते से आंवले जैसे कंचे निकालते हुए उसने कहा—''बुरे कंचे हैं, हैं न?''

''नहीं, अच्छे हैं।''

''देखने में बहुत अच्छे लगते हैं न?''

''बहुत अच्छे लगते हैं।''

वह हंस पड़ा।

उसकी मां भी हंस पड़ी।

आंसू से गीले मां के गाल पर उसने अपना गाल सटा दिया।

अब उसके दिल से खुशी छलक रही थी।

झड़ी मानव आत्माएं

मैं पुल पर बिजली के खंभे से पीठ टेके थोड़ी देर खड़ा रहा। मन बेहद भारी लग रहा था।

पुल से मेरी यह पहली यात्रा थोड़े ही थी। इसके पहले भी उससे गुजरा हूं। मगर पहले कभी मैंने ऐसा कोई ख्याल या दर्द महसूस नहीं किया। शरीर जवाब दे रहा है—आंखों के सामने कोई महीन पर्दा-सा छा रहा है—मानसिक दु:ख के पर्दे की तरह।

नदी का बहाव बिल्कुल थमा हुआ है। फिर भी बत्तियों की नीली रोशनी में वह सुंदर दिख रही थी। लंबी आह भरकर मैं बोल उठा—''तंकम्मा के ही समान।'' उस समय मेरे सूखे होठों पर फीकी मुस्कान खिली होगी। दोनों नगर की गंदगियों से जुड़ी थीं। मगर तंकम्मा रात ही में नहीं, दिन में भी खूबसूरत लगती है। वह लावण्य शायद स्थायी न हो। परवाह नहीं, उसने भी यह बात समझ रखी थी।

मुझसे भूल हो गई। उनका परस्पर समानता का संबंध उतना घनिष्ठ नहीं था। बताने में संकोच क्यों करूं ?... मै उससे प्यार करता हूं। यह किसी के भी सामने कहने को तैयार हूं कि मैं तंकम्मा से प्यार करता हूं।

वह उधर सड़क के मोड़ पर रहती थी। पहली गली में —मकान नंबर नौ। घर तो नहीं—उसका अपना घर नहीं था।

मैं आज सवेरे यहां पहुंचा हूं—दो साल बाद। आते ही उससे मुलाकात करने गया। प्रतीक्षा की कलियां मुरझाती रहीं। थोड़ी देर झिझककर द्वार पर खड़ा रहा। दरवाजा बंद था। अकारण भय महसूस हुआ। कहीं वह इधर न हो तो ...

यदि वह मिले तो मैं क्या कहूं ? क्या कहना चाहिए ?

तंकम्मा से मुझे मिली हुई धोती और देने के लिए अपनी खरीदी हुई साड़ी लपेटकर मैंने हाथ में सुरक्षित रख ली थी। पसीने से वे कुछ गीली हो गई थीं।

उस दरवाजे पर दस्तक देते समय मैंने जिंदगी में पहली बार उसके लिए आंसू बहाए। पुरानी परिचित औरत ने आकर शक्की नजर से देखा। उसका मतलब था—क्या चाहिए ? मैं सिर्फ तंकम्मा को देखना चाहता था। उस औरत की किसी मदद की जरूरत नहीं थी। इसके बाद मैं खुद संभाल लूंगा।

मैंने कहा—''तंकम्मा से मिलना चाहता हूं... !''

बुढ़िया मिस्र की किसी कब्र से खोदकर निकाली गई ममी-सी थी। सब कुछ था—पर थी बेजान।

इंतजार करने का धीरज मुझमें नहीं था। उसने शायद मुझे भुला दिया हो। मगर यह बुढ़िया तंकम्मा को कैसे भुला सकती थी ? तंकम्मा ने ही उसे चार पैसे कमा कर दिए थे।

उसके चेहरे की रंगत कुछ बदली।

मैं सूखी मिट्टी के ढेले पर पानी छिड़क रहा था।

"तंकम्मा यहां से चली गई है...।"

यह कहते हुए उसने हंसने की चेष्टा की।

गली से जानेवाले कुछ लोग मेरी तरफ ध्यान से देख रहे थे।

वह बेशर्म औरत बोली—"आइए, हम अंदर चलें।"

मैं चौखट पर पत्थर के बुत की तरह खड़ा रहा। पता नहीं क्यों, रवाना होते समय ही मन शंकित था कि तंकम्मा वहां नहीं होगी। वही हुआ।

साड़ी व धोती का पैकेट पसीने से तर था।

डाक्टर की बताई बात मुझे याद आई—"मन में कभी तनाव आने का मौका न दें। नहीं तो... "

तब उस औरत ने कहा—"आप बहुत थके हैं— "

वह आगे बोली—"यहां अब कमरे खाली हैं। इंसपेक्टर व सुपरवाइजर चले गए। दो लड़कियां ही हैं—कालेज में पढ़ती हैं।"

मेरा कलेजा धक-धक धड़क रहा था। रोग की शुरुआत थी।

हृदय के भीतर कोई मानो कांटे से कुरेदता है।

हाय!

तब...

"आपको कमरा चाहिए?"

गलियारे में दो प्रौढ़ युवतियों ने आकर उस स्त्री को बुलाया। मैं उन्हें अच्छी तरह देख सकता था।

वहां तंकम्मा के न रहने का तथ्य आरे की तरह मेरे दिल को चीर रहा था।

"वह किधर गई होगी?" मैंने पूछा तो उस औरत ने मेरी तरफ घूरती नजरों से देखा। इस गरज से कि मेरा सवाल बेमतलब है।

मुझे बात अखरी।

मैं सोचता खड़ा ही रहा कि उस औरत ने द्वार खटाक से बंद कर लिया।

क्रोध से मेरी रग-रग सिहर उठी।

गली की धूप एकाएक गायब होकर अंधेरे में बदल गई थी। उस समय दोपहर थी—बिल्कुल बारह बजे थे!

एक जमाना था जब मैं अपनी कमजोरी से खुद हमदर्दी रखता था। मेरा विश्वास था कि मैं उस जमाने को पार कर चुका हूं, किंतु अब वह विश्वास चूर-चूर हो गया।

अप्रतिभ होकर मैं लौट आया। पड़ोसियों से पूछने पर भी कोई खबर नहीं मिली।

पार्क के सामने लॉ कालेज का वह छात्र मिला। वह अकेला था। मुझे देखकर वह बगलें झांकने लगा।

'अरे, आप?''

मैं कुछ नहीं बोला।

''कब आए...आप बहुत दुबले हो गए हैं....''

मैं तंकम्मा के बारे में सोच रहा था।

जब हमारी पहली मुलाकात हुई थी यह युवक तंकम्मा से बड़ा घनिष्ठ संबंध रखता था। यह तंकम्मा से मुलाकात करने कई बार वहां आता था। शुरू में यह एक माह उसके साथ रहा भी था। मैंने देखा था—एक दिन वह बाथरूम से निकली तंकम्मा की फोटो ले रहा था, उसकी अनुमति से ही। मेरे कहने का मतलब यह है कि वे एक-दूसरे के बिल्कुल करीब थे।

मैं खुश हुआ। लो, तंकम्मा का एक दोस्त मिला है जो उसकी खबरें दे सकेगा। उस आदमी से मुझे डाह नहीं हुई। मैंने उससे तंकम्मा के बारे में पूछा।

मगर लगता था कि वह उस युवती को भुला चुका है।

''तंकम्मा...!''

मैं हैरत में आ गया।

''जी हां, हमारे साथ जो रह रही थी —वही।''

मैं उसके बारे में सुनने को उतावला था।

लॉ कॉलेज के छात्र ने मुस्कुराते हुए कहा— ''समझ गया! मगर, उस युवती का नाम तंकम्मा नहीं है...—''

कोई भी हो, बला से! उसका नाम मेरे मतलब का नहीं। हो सकता है, उसे एक से अधिक नामों से पुकारते रहे हों, उसने मुझे अपना नाम तंकम्मा ही बताया था। मेरे लिए वह हमेशा तंकम्मा ही है।

मैं उस युवती के बारे में बहुत कुछ जानना चाहता था। मगर उस युवक को इस बात से तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। फिर भी उसने मानो मेरी खातिर सब कुछ बताया। उसका सार यही था कि वह वहां से चली गई। किसी को बिल्कुल पता नहीं कि किधर गई। किसी को बताए बिना ही चली गई।

मानो कुछ सोचते हुए उसने थोड़ी देर बाद कहा— ''वह मर गई होगी।''

मेरी पसलियों को मानो कांटे से किसी ने बींध दिया।

मैंने पूछा—''आप ऐसा क्यों कहते है?''

''कोई खास बात नहीं! मुझे ऐसा महसूस हो रहा है...''

मुझे भी लगा कि वह मर गई होगी।

उस स्थिति में उसका स्मरण बड़ा व्यथाजनक था। मैं रोज प्रार्थना करता था कि तंकम्मा सुखी व वैभवशाली जीवन बिताती रहे। फिर भी वह मर गई होगी? नहीं... जिंदा रहने की संभावना नहीं।

मेरी बेचैनी देख उसे अचरज हुआ।

उसे लगा कि मैं ध्यान नहीं दे रहा। फिर भी वह कहता जा रहा था।

''आखिरी दिनों में उसे बीमारी हो गई थी।''

गला खंखारकर उसने थूक फेंका।

''नास्टी बिच। गंदी कुतिया।''

मैं चल दिया।

छेदवाले बरतन में पानी के समाने की तरह मेरे हृदय में शक रेंगता जा रहा था।....पॉल ने काहिरा में जिस स्त्री को देखने की बात बताई वह क्या तंकम्मा ही हो सकती है?

पॉल एक व्यापारी जहाज में कर्मचारी था।

मुझे ताज्जुब हुआ कि अब तक वे बातें याद नहीं आईं। उसके बताए सारे हुलिये तंकम्मा से मिलते हैं। गोरी है, दुबली है, औसत से ज्यादा केशराशि है। पचीस व तीस साल के बीच की होगी। सबसे अधिक आकर्षण उसकी दुखभरी आंखों में अनुभूत होता था। वे कभी भुलाए नहीं भूलतीं।

मैंने पॉल के शब्द स्मरण किए। ''सुनो, वह वफादार है—नेक है। मेरा एक पैसा भी खर्च नहीं कराती थी।''

उसने जोड़ा— ''मैं उसे भुला नहीं पाऊंगा। अब भी मैं उसे ख्वाब में देखा करता हूं।''

यह बात उसी पॉल ने बताई थी जो एक एंग्लो-इंडियन छोकरी को पीछे बिठाकर मरीना बीच से अस्सी मील की रफ्तार से बाइक चलाना जिंदगी में सबसे बड़ा कमाल मानता था।

प्राकृतिक सौंदर्य की खान मेरे गांव में झील किनारे किसी तकलीफ के बिना बचपन बिताने के बाद एक किशोरी जीवन में मध्य युग की दहलीज पर असहाय असमंजस में खड़ी है—समुंदर पार काहिरा में।

क्या वह तंकम्मा ही होगी?

''हो सकता है! शायद नहीं भी।''

मैं यों ही भटकता रहा। मुझे किसी खास व्यक्ति से मिलना नहीं था। प्रति क्षण यह विश्वास बढ़ता गया कि मैं इस विराट विश्व में अकेला हूं। अब तक कोई मेरे प्रेम, भय, दुख और विद्वेष में भागीदार नहीं हुआ था। कुछ लोगों ने मुझे 'बीमार' की उपाधि दी थी। कुछ ने सम्मति दी—''एकदम पागल है।''

काश! मेरे भीतर उठते बवंडर की तेजी वे महसूस कर पाते।

काश! वे मेरे दिल की गहराई नापने की कोशिश करते। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

मैं इस सर्दी व गर्मी से बचने के लिए अपनी झोंपड़ी बनाने की धुन में था। जब दूसरे लोग महल व आलीशान बंगले बनाते हैं तब मेरी एक मामूली झोंपड़ी तक न हो तो...

सब ठीक हो गया। जब वह घड़ी आई।...

मैं सोच रहा हूं। अगर तंकम्मा से एक बार मिल पाता...

क्या पूछ रहे हो कि क्या करता... ?

मैं अपने अपार विपाद, तीव्र निराशा एवं असहनीय पीड़ा का तूफान बनकर उसे लेकर उड़ जाता।...

एक स्त्री और पुरुप की तरह हम...

कैसा अनुभव होता!...

चलते-चलते मैं पार्क में पहुंचा। इस बीच कई और लोगों को देखा जो वहां नियमित रूप से आते थे। उनसे पूछा तो जवाब मिला—"यहां नहीं! कहीं गई होगी। नहीं तो मर जाने की भी संभावना है।"

मैंने पूछा— "इसका सबूत?"

वे बोले—"हम लोग इसी शहर में रहते हैं — वहीं।"

पार्क वीरान था। फूलों से लदे एक वृक्ष के नीचे बैठकर मैं सोचने लगा—

यह धरती जब इतनी खूबसूरत है तब आदमी क्यों को खुदकुशी करता है?...वह जीने के लिए ही तो पैदा हुआ है!

अचानक मुझे लगा—वह मरी नहीं होगी। हो सकती है—कहीं-न-कहीं, इसी नगर में। नहीं तो, जो भी कहो, वह मरी नहीं होगी। मैं आंखें बंद किए लेटे-लेटे तंकम्मा के विपय में सपना देखता रहा।

तंकम्मा अनोखी थी। उससे मैंने बहुत बातें नहीं की हैं। कभी-कभी उसे देखता भी था तो इस ढंग से कि वह कोई अजनबी है। मैं बीमार था न! बीच में जोड़ दूं— कभी-कभी लगता है—सभी बीमार हैं।

फटी कमीज सीने के लिए सूई-धागे की जरूरत पड़ी। मुझे पता था कि तंकम्मा के पास सूई-धागा हैं। पूरी रात कहीं बिताकर वह सुबह को लौट आई थी। वह कपड़े बदल रही थी। मैंने इस पर ध्यान नहीं दिया। आइने में मेरी परछाईं देखी तो मुड़कर खड़ी हो गई।

शर्म के मारे उसका चेहरा लाल हो रहा था। चोली मेज पर पड़ी थी। अगर आप पूछें—ऐसी हालत में तुमने कितनी औरतों को देखा है? जवाब होगा—बहुत कम। फिर भी मुझे झिझक नहीं हुई।

वहां एक पुरानी किताब देखी।

'योहन्नान का लिखा सुसमाचार।'

उसके पहले पन्ने पर लिखा था— 'मेरी प्यारी बेटी...' शेप काली स्याही से काट दिया। गया है। पता नहीं क्यों, मेरे हाथ इस समय कांप उठे, मन मुरझाया।

हो सकता है, वह रोज उस पुस्तक को पढ़ती हो।

सूई-धागा लेकर मैं चला। अपने कमरे में लौटा। मेरे दिल के गठन में बड़ी गड़बड़ी नहीं है। वह वहां चौथे कमरे में रहनेवाली युवती है। यहां कोई पहले-पहल आए तो उसे घर की मालकिन की बेटी ही समेझगा। उसने मुझे पहचान लिया है। एक-दूसरे की ऐसी

पहचान कि इसे एक तरह का दीवानापन कहने की जरूरत है। मैं विश्वास करता हूं—एक अज्ञात आस्था-ममता का नाता हम दोनों के बीच है।

उस घटना ने मेरे हृदय के कोमल तारों में एक निगूढ़ संगीत का आवाहन किया।

कुछ दिन बाद लॉ कालेज का वह छात्र वहां रहने लगा। वह शाम को स्नान करके लौटी तंकम्मा का हाथ अपने हाथ में लिए कहता है—"वाह री, मेरी जिगर! जब मैं तुम्हें देखता हूं तब..."

चुप्पी।

"मन में एक अनजान..."

उसकी बात जारी थी।

"सुनो तो, उसमान और मैं एक बाजी लगा रहे थे।"

"किस पर?"

"तुम्हारी उम्र पर। वह कहता—बीस की होगी। मैं कहता—उन्नीस पूरे नहीं किए होंगे। बड़ी सख्त बाजी..."

"धत! झूठा कहीं का...।"

"सच! तीस रुपए की बाजी है। तीस रुपए। वह मिले तो।"

वह युवक उस युवती के भीगे कपड़े बदलता है। नहीं तो, मैंने अनुभव किया कि ऐसा कर रहा है।

कमरे के अंदर बैठी घरवाली रूमाल सी रही थी।

इंजीनियर और सुपरवाइजर किसी भी घड़ी आ धमकेंगे। मैंने अपने कमरे का दरवाजा बंद किया।

और एक दिन—मैं काम पर न जाकर आराम कर रहा था। बड़ी गरमी थी। बाहर निकलने की इच्छा नहीं थी। बादलों से रहित आकाश चांदी-सा चमक रहा था। कई-कई सवाल मन को मथ रहे थे। दरवाजे पर खांसी सुन पड़ी। वह आकर झिझकती खड़ी थी।

"ओह!" अनजाने मेरे कंठ से निकल पड़ा। वह मेरे पास भी आने लगी है...किस बात की शुरुआत हो सकती है! ...

मैं उठकर खड़ा हो गया। मैंने उसे भीतर नहीं बुलाया।

उसके चेहरे पर दीनता-सी झलक उठी।

"मैं आपसे एक बात पूछने आई हूं ..."

मैं ही नहीं, कोई भी यह समझ सकता है। फिर यह भूमिका क्यों?...

"फुरसत की घड़ी में क्या आप मुझे थोड़ी अंग्रेजी सिखाएंगे?"

वह एक अप्रत्याशित प्रश्न था। मुझे पहले आश्चर्य हुआ, फिर मजाक लगा।"

मैंने पूछा— "इसकी जरूरत?...

उसका चेहरा उतर गया।

बिल्ली कमरे में आकर उसकी कलाई चाटने लगी।

वह बिल्ली की तरफ देखती हुई बोली—"कितने दिन तक ऐसी जिंदगी चलाएंगे।"

बाजे का कोई पतला तार टकराकर छूटते समय जैसी आवाज गूंजे वैसी आवाज गूंज उठी।

वे आंखें बड़े गहरे नीले सरोवर में बदल रही थीं।

मेरे मन में बड़ी बेचैनी थी।

लंबी आह भरकर उसने अपनी बात जारी रखी—"एक मिडवाइफ की नौकरी के लिए प्रयत्न करने की इच्छा हो रही है— मगर मुझमें उसकी क्या योग्यता है?"

कुछ हफ्तों के पहले वह उस लॉ कालेज के छात्र की बाहों में पड़ी इश्क कर रही थी। उस युवक ने उसकी उम्र पर बाजी लगाई—कहा कि उन्नीस भी पूरे नहीं किए।

मैंने सोचा— कैसे-कैसे नाटक हैं! क्या तंकम्मा ये सब नहीं जानती? जानती होगी—मैंने देखा—चंपई के फूल जैसे उन गालों पर समय की धूल के कागज चिपक रहे थे।

"क्या आप जानते हैं कि अकेले एरनाकुलम नगर से ऐसे कितने लोग आए हैं?"

उसके जाने के बाद भी यह सवाल मेरे कानों में गूंज रहा था।

आखिरी बार — मुझे तार मिला कि तुरंत जाना होगा। नौकरी का मामला था। न जाने पर समस्या होगी। मैं दुखी खड़ा था। टिकट के पैसे का इंतजाम किस तरह होगा? रास्ते का खर्च भी संभाल लेंगे। मगर ठीक से पहनकर निकलने के लिए अच्छी धोती नहीं है।

जो भी धोतियां हैं सब पुरानी, मैली व तार-तार। मैं बैठा सोच रहा था।

मैं सोचता बैठा था कि वह आ गई।

"क्या मैं अंदर आ सकती हूं?"

वह भीतर आई।

"आपको तार मिला है। है न?"

मेरे मन में आग सुलग रही थी।

"क्या तबीयत सुधर गई? अब बाहर जाने लायक सेहत हो गई?"

परंतु मैंने कुछ कहा नहीं। मैं कह नहीं सका। मैंने ओंठ भींचते हुए बाहर की तरफ देखा।

वह तार उसके हाथों में था। मगर उसने अंग्रेजी नही सीखी है।

मैंने कहा—"शाम की ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेस से मुझे जाना होगा।"

थोड़ी देर के लिए वह चुप रही। पूछा नहीं कि कहां जाएंगे और क्यों?

मैं भी मौन रहा।

बाद में उसने प्रश्न किया—"पैसे हैं?"

मैंने हामी भरी।

उसने पूरे कमरे में नजर दौड़ाई। कमरा अस्त-व्यस्त पड़ा था।

"क्या धुली शर्ट नहीं है?"

"है।"

वह गई और एक धोती ले आई। मैंने मना नहीं किया। मुझे धोती की जरूरत थी।

"क्या जल्दी लौटेंगे ?"

"कोशिश करूंगा।"

तंकम्मा खिड़की की चौखट पर हथेली रख खड़ी हुई मानो सपना देख रही थी।

मैं गया। दो साल बाद लौटा। लौटने पर वह चली गई है— किसी अनजान स्थान को...

मैंने तंकम्मा से बिछुड़ने के बाद ही उसके विषय में अधिक सोचा। उससे मुझे प्यार-भरा बर्ताव ही मिला था। उसने अपना दिल एकाध बार मेरे सामने खोल भी दिया था। पर मैं तो चुपचाप चला गया था।

वह तूफानी लहरों से भरे जीवन में शरण की खोज में जीवन-नैया खे रही है।

मैंने उसके लिए क्या किया ?

मेरी रागिनी बेताल है। उसकी भी। दोनों मिलकर एक नये-शुद्ध संगीत को जन्म दें, यह ख्याल मन में उठा, पर हमारी इच्छानुसार बातें आगे नहीं बढ़तीं।

मैं स्टेशन की तरफ चल पड़ा। पुल को पार करके दूसरी तरफ पहुंचा तो एक चौंकानेवाला दृश्य नजर आया। किनारे थोड़ी दूर पर एक औरत की लाश पानी से बाहर दिखाई दे रही थी। मैंने लड़कपन में पानी पर मरे पड़े मेढक को देखा है। उसी तरह हाथ-पांव पानी के भीतर, पीठ बाहर।

मेरे मन में बड़ा गहरा भय उतर आया—शरीर सिहर उठा। लग रहा था कि दिल की धड़कन हमेशा के लिए बंद हो जाएगी। अवश्य ही वह तंकम्मा की लाश है। नहीं तो वह काहिरा में उस...

उसकी याद करके मन धधकने, झुलसने लगा।

जो भी हो, वह चली गई है। मैंने अपनी आंखों को उस व्यथाजनक दृश्य से हटाकर आकाश की ओर उन्मुख कर लिया।

मैं हल्का हो गया था, जैसे कोई उड़ाकर ले जा रहा हो।

और एक कोंपल कुम्हलाई

जनार्दनन को कल ही अस्पताल से छुट्टी दी गई। आज सवेरे वह घर भी चला गया।

दीवार पर टंगी हुई मेरी तरफ रुख किए मुस्कुराती जो तस्वीर है—वह उसकी मिलिटरी के दिनों की थी। मेरी गोद में पड़ा स्याही-लगा ऊनी कोट और कुछ किताबें— बस यही उसकी संपत्ति के रूप में यहां शेष हैं। जनार्दनन की याद बनाए रखने के लिए इन सबकी जरूरत नहीं है। वह कुर्ग की जंगली झाड़ियों झुटमुटों में से किसी में खिला कभी न मुरझानेवाला गुलाब है। हम उसे कैसे भूल सकते हैं ?

जनार्दनन अपने साथ टूटी कलम और कुर्तों के दो जोड़े ही ले गया। उसकी प्रिय कलम के पीछे स्नेहपूर्ण पिता का इतिहास है। उसी के बल पर वे परिवार का खर्च चलाते थे। मरते समय उन्होंने बेटे को वह कलम दे दी। उनके पास देने के लिए सिर्फ कलम ही थी। उन्होंने कामना की होगी कि बेटे का भविष्य उज्ज्वल हो।

वही कलम टूट गई। अगर सिर्फ कलम ही नष्ट होती तो गनीमत थी। उसके साथ उसका एक हाथ भी गया—दायां हाथ।

जनार्दनन छोटी झोली और छाता लिए सड़क पर जब पहुंचा तब मैं खिड़की के पास खड़ा था। वह जब तक धीरे-धीरे चलते भीड़ में समा नहीं गया तब तक मैं वहीं खड़ा उसे देखता रहा। मैं वही कर सकता था। हुडिक्केरी से पंद्रह मील दूर उस गांव तक जाने के लिए मैं तैयार था। मैंने उसके लिए जरूरी सारी तैयारियां भी कर ली थीं। मगर उसने मना किया। मुझे बस-स्टैंड तक भी उसका साथ नहीं देना चाहिए। इतना ही समझ लेना चाहिए कि बिछोह सिर्फ एकाध दिन का है।

वही उसे पसंद था। मैं राजी हो गया। मैं कभी उसका विरोध करने की हिम्मत नहीं रखता था।

सड़क पर पहुचते ही जनार्दनन ने 'गुड बाई' कहा...

भारी दिल से मैं खिड़की के पास ही खड़ा था। मैं कुछ कह नहीं सका।

जब उसने 'गुड बाई' कहते हुए हाथ हिलाया तब कोहनी के नीचे का कोट गिरकर झूल गया। उसने भी मेरे समान उस बात पर ध्यान दिया होगा। उसका चेहरा एकाएक सूख गया। लेकिन यह भाव थोड़ी देर के लिए ही था। हमेशा खेलती मुस्कुराहट फिर से उसके चेहरे पर चमक उठी। वह एक बार फिर से हाथ हिलाते हुए वापस चला गया।

यहां अब मैं अकेला हूं। मैं आज बाहर नहीं निकला। ज्यों-ज्यों जनार्दनन के विषय में सोचता हूं त्यों-त्यों बड़ी बेचैनी महसूस हो रही है। क्या वह सिर्फ दुःख था ?... नहीं! मुझे लगता है कि बड़ी मुश्किल से पाई हुई कोई चीज खो गई है। इस एकांत में वह अनुभव प्रतिक्षण बढ़ रहा है।

उसे गए कुछ घंटे ही गुजरे हैं। परंतु आश्चर्य की बात! मुझे यह लगता है कि वर्षों से हम एक-दूसरे से बिछुड़े हैं। शायद मैं सपना देख रहा हूं। अनुभूतियों की छाया में ऊंघते हुए झपकियां लेते मेरे लिए स्वयं जनार्दनन एक सपना बन सकता है।

न जाने मैं क्या-क्या बक रहा हूं?

मुझे उम्मीद नहीं थी कि वह इतनी शीघ्रता से अस्पताल से लौट सकेगा। कल मैं जनार्दनन से मुलाकात करने चल पड़ा था। उसके पढ़ने के लिए एक किताब भी ली थी। कमरा बंद करके बाहर निकला तो देखा—देवताओं के सामने जनार्दनन खड़ा है। मेरे कुछ पूछने से पहले ही वह बोला—"मैं घर जा रहा हूं।"

जनार्दनन के घाव भर चुके थे। फिर भी सेहत पूर्णत: नहीं सुधरी थी। मैंने कहा कि ऐसी हालत में अस्पताल से आना ठीक नहीं था। तब उसने पूछा—"जब मुझसे बुरी आर्थिक हालत के लोग बरामदे में लेटे रहते हैं, तब क्या आप यही कहना चाहते हैं कि मैं वहीं और दो सप्ताह रहूं? "

मैंने उसका उत्तर नहीं दिया।

मैं अभी तक अपने लिए जीता रहा । पर जनार्दनन की बात अलग है। वह पहले दूसरों की बात सोचा करता है। ऐसे जनार्दनन से मैं क्या कहता?

हमेशा की तरह मेरी पीठ थपथपाते हुए फिर से उसने पूछा—"आप क्या कहते हैं?... अगर मेरी जगह आप होते तो क्या यही नहीं करते?"

मैंने सिर्फ उसकी राहत के लिए कहा— "बिल्कुल।"

मैं भोजन करने अकेले ही होटल गया। बहुत हठ करने पर भी वह नहीं आया। यह भी कहा कि उसके लिए खाना न लाया जाए। शायद सोचता हो कि लोगों के सामने बाएं हाथ से कैसे... ? ऐसे भी हो सकता है। मगर शायद मेरा संदेह समझकर उसने कहा—उसे इसका कोई संकोच नहीं।...जरूरत हो तो वह चम्मच से काम चला सकता है। अस्पताल में वह यही करता आया है।

मैंने एक बार बताया—"रात को भूखे रहना पाप है।"

जनार्दनन यह सुनकर हंस पड़ा। इसके बाद उसने उस खिड़की के पास खड़े होकर बाहर की तरफ इशारा किया। वहां कोने में बिजली के खंभे के पास एक छोकरा कूड़ेदानी में कुछ ढूंढ़ता दिखाई पड़ा।

थाली के सामने बैठने पर भी मैंने खाना नहीं खाया। होटल की भीड़ कुछ कम हो गई थी। होटल के कर्मचारी ने सांचे में रखकर प्रेस किया-सा चावल का बट्टा पत्तल पर पटक दिया तो जनार्दनन की याद आई। अतीत की घटनाओं की याद मानस-पटल पर तिरने लगी। मैं सोच रहा था कि जनार्दनन उस समय मेरी संवेदना में भाग लेने यहां रहता तो कितना अच्छा होता।

उसी होटल में मैं जनार्दनन से पहली बार मिला था और परिचय प्राप्त किया था—चावल के बट्टे के लिए।

करीब तीन साल पहले की बात है। नगर में खाद्य-सामग्री का भीषण अकाल था। रात को भोजन चाहिए तो दोपहर को ही होटल में भोजन के लिए आर्डर करना होगा तभी रात को भोजन मिलेगा। यह नगर उत्तर भारत के तीर्थों को जानेवाले लोगों का एक पड़ाव था। इसलिए दूसरे शहरों से यह शहर अधिक अकालग्रस्त था।

मेरी मां बंबई मे रहनेवाली बेटी के पास जाते हुए रास्ते में मुझसे मिलने यहां आ गई थी। उनके साथ मेरा छोटा भाई भी था। उनका आगमन बिल्कुल अप्रत्याशित था। मैं मां को लेकर होटल गया तो होटलवालों ने सिर्फ एक टिकट दिया। एक ही आदमी को खाना मिल सकता था। पहले ही सूचना क्यों नहीं दी ?

विलंब हो जाने के कारण बाहर भोजन की कोशिश करना बेकार था। मैं निराश वहीं खड़ा रहा। मीलों दूर से आई मां को एक जून का खाना देने में भी अपनी असमर्थता पर मन बहुत दुखी था।

मैं होटल के मालिक के आगे गिड़गिड़ाया। पर वह टस से मस नहीं हुआ।

खैर, एक टिकट तो है। उससे मां को भोजन कराने का निश्चय किया। छोटा भाई व मैं कॉफी पीकर काम चलाएंगे।

उसी समय एक युवक मेरे पास आया और एक टिकट मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा - "आप इसका उपयोग कर सकते हैं।"

मैंने उसे गौर से देखा— आसमानी रंग का चारखानेवाला ऊनी कोट और खाकी पतलून पहने लंबी काया का युवक! उसकी केशराशि कांच की अंगूठी-जैसी काले घुंघराले व घने बालों की थी! उसके मुखमंडल पर कभी न मुरझानेवाले मंदहास का प्रकाश था।

ऐसा लगा मानो मैंने उस युवक को कहीं देखा है। पर पूरी तरह याद नहीं आया। उस आदमी से कैसे टिकट लेता ? जिससे कोई जान-पहचान न थी! मैं झिझकता रहा।

"आपकी मां प्रतीक्षा कर रही हैं। मेरी भी एक मां है।"

उस सज्जन ने मेरी पीठ यों थपथपाते हुए बातें कीं मानो लंबे अरसे से हम एक-दूसरे को जानते-पहचानते हों। मैं स्तब्ध रहा। उसके उन शब्दों में ममता लहरा रही थी। उस दृष्टि में विश्वास स्फुरित हो रहा था।

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि मेरी जेब में टिकट डालकर वह कहीं चला गया।

वह युवक शुद्ध केरलीय मलयालम में नहीं बोल रहा था। उसने अपनी भाषा संवारने की कोशिश भी नहीं की। पर वह हमेशा निश्छल ही बना रहा।

यह अनुभव मेरे लिए बिल्कुल नया था।

चावल ठंडा पड़ा था। मैं उसके सामने बैठा कुछ समय तक सोचता रहा। खाने की इच्छा या भूख नहीं थी। इसलिए हाथ धोकर घर चला गया।

रास्ते में कहीं रुके बिना कमरे में लौटा तो देखा कि जनार्दनन उत्तर दिशा का दरवाजा खोलकर बाहर देख रहा है। पूरे कमरे में एक अजीब बू छाई थी जिसमें सड़ी मछली की बदबू और नये जासौन के फूल की खुशबू मिली हों। मुझे अचरज हुआ। वह दरवाजा हमेशा

बंद रखता क्योंकि वह बाजार की तरफ खुलता था। उसके अलावा बारिश के छींटे भी पड़ते थे।

''यह दरवाजा भी एक बार खोलना है —है न? उस गली के नजारे देखते-देखते आंखों की ताकत छीज गई।''

जनार्दनन तीन साल पलटन में काम करने के बाद कालेज में भरती हुआ था। कभी-कभी दार्शनिक भावों में फिसल जाता। ऐसे मौकों पर उसके गालों की लालिमा बढ़ जाती। हमेशा आनंद-नृत्य करती वे आंखें ज्वलित हो उठतीं। वह ऐसी ही घड़ी थी।

कल रात हम घंटों बात करते रहे। जनार्दनन ने बिहार में देखी और बंगाल में भुगती बातें फिर से स्मरण कीं। कई बार उसने उनकी चर्चा की है। उन्हें कल भी उसने दुहराया।

मैं ध्यान से सुन रहा था! मैंने आज तक किसी दंगे में भाग नहीं लिया था। रोकने भी नहीं गया था। मुझे जनार्दनन के विषय में दु:ख हुआ। जानता हूं कि वह युवक अपनी जिंदगी तबाह कर रहा था। यह संसार बेवकूफों और पगलों का है। जनार्दनन इस संसार को सुधारने की तैयारी में है।

उसी प्रयास में उसका एक हाथ नष्ट हो गया। इस पर भी वह नहीं छोड़ता।

वह अपने अतीत पर, दु:ख या अस्पष्ट भविष्य पर निर्भय कहता गया। जब धीरज ने जवाब दिया तब मैंने कहा — ''जनार्दनन! आदर्श केवल अग्निकुंड होता है। आज से पहले भी कितने ही पंतगे उसमें गिरकर जल चुके।''

जनार्दनन ने हंसने की कोशिश की।

मैंने उसे उसकी पारिवारिक परिस्थिति का स्मरण कराया। उसका घर नहीं है। उसकी मां की चार-पांच और संतानें हैं जो उससे छोटी हैं। जनार्दनन से घनिष्ठता होने से पहले मेरा ख्याल था कि कुर्ग से आनेवाले सभी लोग बागानों के मालिक होते हैं। बाद में पता लगा कि यह ख्याल गलत था।

जनार्दनन अपने परिवार का अकेला भविष्य था। उसकी प्रगति के बाद ही परिवार के शेष लोगों की हालत सुधर सकती थी। उन्हीं के लिए वह पलटन में भरती हुआ था। जब वह पलटन की सेवा से मुक्त किया गया, तब छात्र होने की उम्र बीत चुकी थी। फिर भी वह कालेज में भरती हुआ।

मैं युद्ध के दृश्यों से घर लौटकर फिर से पढ़नेवाले कुछ लोगों को जानता हूं। पर वे सब डिग्री हासिल करने का प्रयत्न कर रहे थे। जनार्दनन की स्थिति कुछ और ही थी।

मगर आज!... उसके सहपाठी परीक्षा-भवन में उत्तर लिख रहे हैं, पर वह घर लौट रहा है—न लिखने की कलम, न लिखने का हाथ ही। वह मां कैसे सब्र कर सकेगी?

हां, सही बात है। जिस खेत में जीवन-यापन के लिए जरूरी अनाज बोना था उसमें जहरीले पौधे बोने नहीं देना चाहिए। उन पौधों को उखाड़ देना हम सब का फर्ज है। जनार्दनन ने वही चेष्टा की थी।

मगर जनार्दनन नहीं जानता था कि वह उन पौधों को अकेले उखाड़ नहीं सकेगा। उन

जहरीले वृक्षों की जड़ें गहराई में जम चुकी हैं। अधिकांश लोग उनके थाले में खाद डालते रहते हैं।

अब लगता है कि मुझे इतना नहीं कहना चाहिए था। जो भी हो, मामला हृदय से अधिक बढ़ गया था। जनार्दनन को चोट भी पहुंची होगी। मैंने उसको याद दिलाया कि उसकी शिक्षा अभी अधूरी है और उसका परिवार बर्बाद हो सकता है। तब वह चिंतित हो गया। उसी समय उन बातों पर गहराई से विचार किया।

उसकी बातचीत थोड़ी देर के लिए रुक गई। उसके गालों की लाली बुझ गई। वह किसी चिंता में लीन हो गया।

जनार्दनन ने लंबी आह भरकर कहा—"आपके कथन में सच्चाई है। मगर ... मुझे अब भुजंगन की बात स्मरण आ रही है। कल वह अस्पताल आया था। वह अब पछता रहा है। वह पहले का भुजंगन नहीं है। क्या आप इसे मामूली बात बताएंगे ?... अरे, मेरा एक हाथ ही तो गया! परवाह नहीं। हो सकता है प्राण चला जाए, पर देश का कल्याण हो...।"

मैं चौंक उठा। जनार्दनन के चेहरे की तरफ आंख उठाकर देखने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। खुली खिड़की से मैंने बाहर देखा। मेरी आंखें छलछला उठी थीं। उस वक्त मेरे मन में जो व्यथा उठी वह..."

भुजंगन मेरे लिए अजनबी नहीं रहा। काली टोपी, खाकी वर्दी और कलाई पर रेशमी राखी बांधे वह युवक यहां आया है। इस शहर में कोई ऐसा नहीं जो उसे नहीं पहचानता। छात्र-समाज में उसका सबसे ज्यादा प्रभाव है। वह धर्म के नाम पर स्वयं मरने को ही नहीं, नास्तिक लोगों को नष्ट करने को भी तैयार है। इस नगर के जवानों का एक बड़ा दल उसका समर्थन करता है।

एक बार भुजंगन ने मुझसे पूछा— "आप हमारे संघ के सदस्य क्यों नहीं बनते ?"

वह जनार्दनन से शरणार्थियों की बाढ़ के बारे में बहस कर रहा था। इसी बीच उसने मुझसे यह सवाल किया।

"मै शीघ्र ही शामिल होऊंगा।" विनय का स्वांग करते हुए बहाना बनाने के सिवा मेरे पास और कोई चारा नहीं था।

भुजंगन जनार्दनन को अपने दल में लाने के प्रयास में था। किंतु जनार्दनन तो भुजंगन का कायाकल्प करने के लिए प्रयत्नशील था।

मैं तो चाहता था कि उन दोनों का संपर्क टूट जाए। जनार्दनन से मैंने इसका जिक्र भी किया। वह जवाब में हमेशा सिर्फ मुस्कुरा देता।

यह युवक जान-बूझकर विपरीत शक्तियों की कार्यवाहियों के खिलाफ अकेले लड़ रहा था। इस पर मुझे दुःख और आश्चर्य होता है। जनार्दनन तो मन में इस पर गर्व करता है कि भुजंगन के मन में परिवर्तन ला रहा है। काश, वह जानता!... नहीं...उसे वह न जाने यही अच्छा है।... वह जो कुछ अनुभव कर रहा है वह उसके जीवन का स्रोत है। उसे तहस-नहस मैं क्यों करूं... ?

गणेश चतुर्थी के दो दिन बाद की बात है। रात को बड़ी विराट शोभायात्रा थी। उसमें पहली पंक्ति में कौन था?... गणेश की मूर्ति रथ में रखे भुजंगन!

जनार्दनन को कभी इसकी सूचना न मिले! अगर पता लग गया तो...

यदि पुनर्जन्म हो तो उसे निश्छल हृदय के रूप में जन्म लेने का दुर्भाग्य न हो!...

कल रात मैं ठीक से सोया नहीं। जनार्दनन एक मोमबत्ती जलाकर उसकी रोशनी में कुछ लिख रहा था। उसने सोचा होगा कि मरी मछली की आंख-सी पच्चीस वाट की यह बत्ती मेरी नींद में बाधा बनेगी। उसके चेहरे पर कोई सुंदर सपना देख रहे बालक का-सा आनंद व उल्लास झलक रहा था। मैं अनजान बना लेटा रहा।

अपने घटनाओं से भरे जीवन में मैं कितने ही लोगों के संपर्क मे आया हूं। कुछ लोगों ने मुझसे हंसमुख का-सा व्यवहार किया, पर उनके दिल में जहर पाया। उन्हें जाने दो। कई लोग ऐसे हैं जिन्हें प्यार व सम्मान की दृष्टि से देखता हूं। जनार्दनन उनमें से एक है। ऐसे लोग भी हैं जिन्हें मैं जनार्दनन से भी अधिक प्यार करता हूं। परंतु मैं कभी उसके हृदय की गहराई नहीं नाप सका हूं। उसके व्यवहार ने कितनी ही बार मुझे चकित कर दिया है। वह कभी दूसरों के रास्ते में टांग नहीं अड़ाता था।

संभवत: मैं आगे जनार्दनन से न मिल पाऊं। मैं वादा तो नहीं कर सकता। उसका दाए हाथ से वंचित व्यक्तित्व साधारण व्यक्ति का-सा नहीं रहेगा।

मेरे प्रेम में आप आश्चर्य व श्रद्धा का तत्व देख रहे होंगे।

मैं यहां इस उम्मीद से आया था कि किसी झंझट के बिना अकेले दिन बिताऊं। फिर भी अपने निश्चय के खिलाफ मैंने जनार्दनन को यहां बुला लिया। वह आया भी।

सारी बातें इसी तरह होती हैं। मैं जनार्दनन की इच्छा के अनुसार चलता रहा, पर उसे अपनी इच्छानुसार कभी चला नहीं सका। उसके मंदहास के सामने मैं हमेशा हार जाता। अब सोच रहा हूं—काश! ऐसा न होता!

भुजंगन और मित्रों के बुलाए गए उस विराट सम्मेलन के विषय में मुझे पहले से खबर मिली थी। मेरा अंदेशा था कि सम्मेलन में कोई हंगामा जरूर होगा। नगर में अफवाह उड़ रही थी। धर्म की रक्षा के लिए खून बहाने की जरूरत उन्हें महसूस हुई थी।

जनार्दनन को मैंने मनाया, समझाया। उसे सचेत किया कि वह उस सम्मेलन में भाग न ले। सभी उसे पहचानते हैं। कोई हंगामा हो तो किसलिए को हाथ-पैर तुड़वाएं! उसने दुनिया के हर प्राणी को सुधारने का ठेका तो नही लिया है।

यह कहने के बावजूद मैं खुद उसके साथ गया। उस मनहूस दिन को यदि मैं उसे कमरे से बाहर निकलने की अनुमति न देता तो उसका हाथ नष्ट न होता! ...

उस दिन नगर में मानो आग-सी लगी थी। भीड़-भड़क्का और शोरगुल! ... जहां देखें वहीं काली टोपी और खाकी पैंट। भुजंगन के दोस्त घोड़े पर राजकीय सम्मान की सामग्री लिए रेलवे स्टेशन गए। उनके स्वामी जी पहली बार यहां आ रहे थे।

मैं उस दिन जल्दी ही आफिस से लौटा। उस खिड़की के पास खड़ा बाहर देख रहा

था। सड़क के दूसरे कोने में शोरगुल था। कुछ काली झंडियां दिखाई दीं। कुछ लोग चिल्ला रहे थे —"स्वामी जी वापस जाओ।" नीचे के पानवाले ने कहा कि लगता है, किसी छात्र को चोट लगी। बड़ी भीड़ जमा थी।

मुझे अकारण डर लगा कि आगे क्या होगा? क्या धर्म के नाम पर खून बहेगा? मैं सोचता रहा। तब जनार्दनन आया और उसने कपड़े बदले। पर मैंने नहीं पहचाना।

जनार्दनन ने आकर पीठ थपथपाते हुए कहा—"क्या सोच रहे हैं? चलिए ! क्या सम्मेलन में नहीं जाएंगे?..."

उस समय उसने अपना सबसे प्रिय ऊनी कोट व पैंट पहने थे। मेज से कलम लेकर जेब में खोंसने के बाद वह फिर बोला—"हूं...चलिए...।"

"सुनो तो! आज हमें नहीं जाना चाहिए। कोई हंगामा हो जाए तो?"

"वाह! हंगामा! आओ भी।"

अधिक बातें किए बिना हम चले।

ज्यों-ज्यों हम बड़े मैदान के नजदीक पहुंच रहे थे त्यों-त्यों भीड़ व शोर बढ़ता गया। मुझे महसूस हुआ कि किसी भी समय टकराव संभव है।

हम ज्यों ही मुहम्मद अली रोड से मैदान में पहुचे त्यों ही एक स्वयंसेवक ने हमें रोका।

"कृपया इस तरफ जाइए...।"

उसने हमें जाने का मार्ग दिखाया। ऐसे अनेक स्वयंसेवक थे।

सम्मेलन के शुरू होते-होते मैदान लोगों का समुंदर-सा हो चुका था। उसकी सीमा-रेखा पुलिस व स्वयंसेवकों ने बना दी।

गेरुआ वस्त्र पहने, शिखा व दाढ़ी बढ़ाए एक अधेड़ सज्जन को स्वयंसेवकों की सुरक्षा में आगवान की लकड़ी के बनाए ऊंचे मंच पर पहुंचाया गया।

"स्वामी जी—जिंदाबाद!"

वातावरण मुखरित हो उठा!

स्वामी जी ने माइक के सामने तनकर खड़े हो हाथ फैलाकर सबको आशीर्वाद दिए।

शायद रेडियो पैवेलियन के हिस्से से कुछ लोग चिल्ला उठे—"गो बैक!"

स्वयंसेवकों का एक दल उस तरफ उछल पड़ा।

स्वामी जी यात्रा से थके थे। उन्होंने सोफे पर बैठकर ही भाषण दिया।

"इस ऋषि-भूमि में अवतारी पुरुष हुए हैं। आगे भी वे जन्म लेंगे। गत युगों में श्रीराम हुए, श्रीकृष्ण हुए। हिंदू धर्म का ह्रास होने पर श्री शंकराचार्य का जन्म हुआ। आज तो हमारा धर्म खतरे में है। इसलिए मैं..."

पेलट बलूण स्टेशन के नजदीक से लोग दौड़ रहे थे। पुलिस ने लोगों का नियंत्रण करते हुए छोटे पैमाने पर लाठी-चार्ज किया।

स्वामी जी का भाषण जारी थी—

"इसलिए मैं कहता हूं कि मैं अवतारी पुरुषों की आखिरी कड़ी हूं। तुम्हें देने के लिए

मेरे पास एक संदेश है।

भीड़ में से कोई पूछ बैठा—"क्या आप अवतारी पुरुष हैं?"

स्वामी जी भाषण रोककर मुस्कुराए—"आप चाहें तो मुझे चुनौती दें।"

माइक के सामने खड़े होकर स्वामी जी ने पूरे मैदान पर दृष्टि डाली।

मैं कुछ कर या कह भी नहीं सका कि जनार्दनन उठ खड़ा हुआ।

"जब भारत को हिंदू राष्ट्र पुकारते हैं तब..." कहीं से एक पत्थर आ गिरा। कुछ लोग उठकर भागने लगे। पैवेलियन और बलूण स्टेशन की दिशा से नारे गूंज उठे।

बड़े पैमाने पर लाठी-चार्ज शुरू हुआ।

वहां बहुत कुछ चला। लोग तितर-बितर हो चारों तरफ भाग निकले। उनमें प्रोफेसर, डाक्टर, वकील, छात्र, मजदूर—सभी थे। गिरे हुए लोगों की पीठ को रौंदते हुए दूसरे भागे।

लोग लाठी खाते-न खाते नीचे गिर पड़ते थे।

लोग परस्पर चुनौती देते, आक्रोश व्यक्त करते, अभिशाप देते। उनकी आवाज दूर-दूर तक सुनी जा रही थी।

हंगामे के प्रारंभ में ही जनार्दनन और मैं एक-दूसरे से अलग हो गए थे। मेरे कमरे में पहुंचने पर भी वह लौटा नहीं था।

मैं राह देखता रहा। मैं अपनी 'मालिश' का दर्द भूल चुका था और जनार्दनन के बारे में सोच रहा था।

आखिर वह आया। उसका कोट स्याही फैलने से मैला हो गया था। दर्द के मारे वह एक हाथ ऊपर उठाए हुए था।

जनार्दनन बड़ा बेहाल दिखाई पड़ा। फिर भी वी मुस्कुराना नहीं भूला। बड़ी मुश्किल से उठाकर ही सही, अपने हाथ से मेरी पीठ सहलाता रहा।

जनार्दनन के हाथ की हड्डियां टूट चुकी थीं।

मैं जनार्दनन को गाली देने की तैयारी मे था। मगर उसे देखकर आंखें आंसू से भर आईं।

दूसरे दिन जनार्दनन अस्पताल गया। जब घाव बहुत पका और मवाद बढ़ गया तब हाथ काटकर अलग करना पड़ा—वह हाथ से मेरी पीठ कभी नहीं थपथपाएगा।

खुली खिड़की से सूरज की पीली किरणें भीतर आ रही हैं। यहां खड़े-खड़े मैं परीक्षा देकर कालेज से लौटते छात्रों को देख रहा हूं। स्याही व खून मिलकर जनार्दनन के ऊनी कोट में चिपके हैं। वह मेरी गोद में है।

बहुत दूर, प्राकृतिक सुषमा की भूमि कुर्ग के किसी छोटे घर में बुढ़ापे की दहलीज पर पहुंची एक मां बेटे की राह देखती होगी। राह चलते-चलते थक गए उस पुत्र को दरवाजे पर कभी दस्तक देनी नहीं पड़ेगी। मगर पुत्र को देखने पर उस मां की स्थिति कैसी रहेगी?

बड़े मैदान के जिन पौधों पर खून टपका वे सूख नहीं जाएंगे। बारिश के मौसम में वे फिर हरे हो जाएंगे। परंतु उस युवा की हालत— जिसका हाथ कट गया?

वे बिस्कुट जिन्हें खा नहीं सका

उन दिनों मैं खिलते केले के फूल जैसी अपनी छोटी आंखें खोलकर चारों तरफ के दृश्यों का मजा लेने लगा था। एक दिन सवेरे स्कूल पहुंचा तो सुना कि हम लोगों की जानम्मा टीचर स्कूल छोड़कर जा रही हैं। इसलिए सोचा कि अम्मुक्कुट्टी झूठ बोल रही है। जानम्मा टीचर कहीं नहीं जाएंगी। क्यों जाएंगी ? वाह ! कहां ? और क्यों ?

अगर सचमुच जा रही हैं तो ...

यह बात सोचकर मन को बड़ा दु:ख हुआ। इन सवालों के जवाब में अनेक प्यार-भरे अनुभवों की स्मृतियां मेरे मन में थीं।

घने केशों के जूड़े में फूल खोंस, सफेद साड़ी पहने हंसमुख जानम्मा टीचर!

छात्रों से भरी कक्षा में अम्मुक्कुट्टी से सटकर एक कोने में बैठा मैं न उसकी बातों पर ध्यान दे रहा था, न दर्जे में पढ़ाई जानेवाली बातों पर। मेरा मन जानम्मा टीचर की बात सोच रहा था।

अम्मुक्कुट्टी ने तब मुझे चिकोटी काटी। मैंने न जानने का बहाना किया। उसने फिर से चिकोटी काटी। मामला समझने के लिए मैंने आंख उठाई तो—हाय राम! रामन मास्टरजी गत दिवस दिए गणित के सवाल का जवाब पूछ रहे थे। वे करीब आ गए हैं। दो बेंच और! उसके बाद अम्मुक्कुट्टी। उसके बाद मैं। आगे...

मैं स्लेट लेकर तैयार हो गया।

रामन मास्टर की बेंत तेजी से पड़ने की आवाज गूंज रही थी। कई छात्र रो रहे थे। जब देखा कि रोनेवालों में माधवनकुट्टी भी है तब मेरा हाथ अपने आप दर्द महसूस करने लगा। अगर माधवनकुट्टी का जवाब गलत हो तो फिर किसका जवाब सही होगा ?

व्यापारी ने हाट में तीन भैंसें और चार गायें खरीदी। उनमें दो भैंसें और एक गाय मर गई। शेष को उसने बेच दिया...

मैं मन में सवाल हल करने—जोड़ने-घटाने लगा। उधर अम्मुक्कुट्टी मेरे चेहरे की तरफ देखे बिना मुझे सुनाते हुए कह रही थी—"उसका जवाब बता दे — जल्दी।"

उसके चेहरे पर सियार की-सी चतुराई और कुत्ते-सी फूर्ति रहती है। मगर—अब वह चेहरा कागज-सा सफेद हो गया था। रामन मास्टर के बेंतनृत्य की बात ने उसे आतंकित किया होगा।

उल्टे मुझे खुशी हुई—जरा डरे तो। इसमें थोड़ी स्टाइल है। हमेशा शेखी बघारती है। किसी की इज्जत नहीं करती। लो, अब सारी शेखी किरकिरी हो जाएगी।

तो भी उस पर बेंत पड़ना मुझे पसंद नहीं था। उसके सारे ऐब जानने के बावजूद मैं उसे चाहता था। सच्चाई क्या है ? कितनी ही बार उसने मुझसे छल किया है! उपहास किया

है, हंसी उड़ाई है। हर दफे मैं सोचता—आगे कभी अम्मुक्कुट्टी से बोलूंगा नहीं।

तो? हमेशा वही जीतती। जो वह चाहती वही होता।

"जरा बता दे पप्पा! मास्टरजी अब मुझसे पूछेंगे।"

उसकी आवाज में दर्द व निराशा थी। उसकी अधूरी कसम की याद करके मैंने उससे पूछा—"नेय्यप्पम* लाई हो?"

"हां"

"पायसं?"

"वह कल!"

मुझे यकीन नहीं हुआ! वह धोखा दे सकती है। पहले भी उसने धोखा दिया है।

अम्मुक्कुट्टी के चेहरे की ओर मैंने नजर फेंकी। पर वह रामन मास्टर की ओर देखती रही।

"नेय्यप्पम कहां है?"

उसने उस छोटी डिबियानुमा पेटी को छूकर दिखाया जिसमें वह पेंसिल, पानी-भरी शीशी, टूटी चूड़ियां आदि रखती थी।

मेरे मन को तसल्ली हुई। उस पेटी में तीन-चार नेय्यप्पम रखे जा सकते हैं।

"क्या अब भी नहीं बताएगा?"

मैंने बता दिया।

वह संतुष्ट हो गई। उसके चेहरे पर एक नयी चमक आ गई।

पहला सही जवाब अम्मुक्कुट्टी का था।

मास्टर साहब को उसकी होशियारी में यकीन नहीं था। उन्होंने कहा—"कहां? स्लेट दिखाओ..."

मैं कुछ कह या कर नहीं पाया। उसके पहले ही उसने बेंच से मेरी स्लेट उठाकर मास्टर को दिखा दी—मानो उसी की स्लेट हो !...

मेरी बारी आई तो स्लेट दिखा नहीं सका। सवाल किए बिना हल करने का झूठ बताने की सजा तीन बेंत मिली। हथेली और दिल—दोनों तमतमा उठे। अम्मुक्कुट्टी पर गुस्सा आया। पर जाहिर नहीं किया। वह नेय्यप्पम लाई है न!

दोपहर की घंटी बजी। मैं अम्मुक्कुट्टी के साथ हो लिया। गली में जब एकांत में पहुंचे तब अम्मुक्कुट्टी ने वह पेटी मेरे हाथ में रख दी और कहा—"खोलकर ले लो।"

मैंने बड़ी आशा से पेटी खोली। पर उसमें नेय्यप्पम नहीं था। बाकी सब था। मैंने पेटी फेंक दी।

अम्मुक्कुट्टी जोर से खिलखिला उठी।

मुझे कुछ नहीं सूझा। उसे टुकुर-टुकुर देखता रहा। मैंने एक बार सहपाठियों की

---

*दक्षिण की खास मिठाई। घी, गुड़, मैदा और चावल से तैयार की जाती है। मालपुआ (मीठे पुए), गुलगुले की किस्म की। खासकर मंदिर में भगवान को वह भोग को वह भोग में चढ़ाया जाता है।

खिलखिलाहट सुनी। मेरी हथेली पर भारी बेंत के पड़ते समय उठी खिलखिलाहट! मुझे याद आया था—रामन मास्टर ने मुझे बुलाया—''इधर आ, नालायक!'' मैंने सारी बेइज्जती अम्मुक्कुट्टी के लिए बरदाश्त की थी। अगर मैं मास्टर को बताता कि अम्मुक्कुट्टी ने जो स्लेट दिखाई वह मेरी थी?...

वह पहले ही कह सकती थी कि नेय्यप्पम नहीं लाई है। तब भी मैं उसको उत्तर बताता। पहले इस तरह बताया भी है। लेकिन वह मुझे कठपुतली की तरह नचा रही थी।

झूठी! चोर! ...

इन सबके अलावा मेरे पेट में चूहे दौड़ रहे थे। सवेरे स्कूल चलते समय कुछ नहीं खाया था।

खाने को घर पर कुछ हो तभी तो खाने की बात उठती है।

उपहास की पुड़िया उस छोकरी के सामने अगर मैं एक और क्षण खड़ा रहता तो रो पड़ता।

इसलिए मैं स्कूल को ही लौट चला। किसी के साथ खेलने नहीं गया। उस क्षण सभी से नफरत हो गई।

घर का हुक्म था कि खाना हो या न हो, स्कूल जरूर जाना है। मेरी यह एक आदत हो गई थी।

मैं भूख बरदाश्त कर सकता हूं। मगर उसने मुझे जो धोखा दिया उसे कैसे बरदाश्त करता? मुझे बुद्धू बनाने के अलावा वह मेरे मुर्झाए चेहरे को देखकर हंस भी पड़ी थी।

काश! उसको मेरी असली हालत मालूम हो जाती ...!

मैं मन-ही-मन योजना तैयार कर रहा था कि किस-किस तरह से अम्मुक्कुट्टी को दर्द पहुंचाएं। उसके पूरे बदन में आलपिन चुभो देना चाहिए। नहीं तो आम काटने के चाकू से उसकी उंगली काट देनी चाहिए। कुछ-न-कुछ करने पर ही वह सबक सीखेगी।

भूखे पेट और जलते दिमाग से मैं सपना देखता रहा।

अम्मुक्कुट्टी खाना खाकर वापस आई। वह मेरे सामने आकर खड़ी हुई। मैंने उसे देखकर अनदेखा कर दिया।

उसने कुछ पूछा।

मैंने मुंह नहीं खोला। ओंठ का कोना भींचते हुए किसी दूसरी दिशा में देखता रहा।

थोड़ी देर बीतने पर मेरे मन का दु:ख एकाएक उमड़ पड़ा, सांस घुटने लगी और आंखें डबडबा आईं। अम्मुक्कुट्टी से ही नहीं, संसार में किसी से मुझे कोई खास दुश्मनी नहीं सूझ रही थी।

मैं वहां से उठकर चलने लगा तो अम्मुक्कुट्टी ने रोका। वह भी रो रही थी।

यह एक नया अनुभव था। मैंने अम्मुक्कुट्टी को कभी रोते नहीं देखा था।

हिचकियां भरते हुए पूछा—''क्या खाना खाने नहीं गया?''

उसके बाद क्या पूछना है—यह उसे पता नहीं था।

उस गोरी-गोरी लड़की की नीली आंखों में पानी भर आया। यह देख मैं अपना सारा दर्द भूल गया। लंबे अरसे तक व्रत रखने के बाद मेरी अभिलाषाएं पूरी होने लगीं। आत्मा में सिहरन-सी महसूस हुई। इतनी ही बात है कि उसका सिर मेरे सामने झुके। किसी बात में उसे हार माननी चाहिए।

वही हुआ। नहीं तो उस रोने का मतलब क्या है?

हम कक्षा में जब लौटे तब अम्मुक्कुट्टी ने कहा—"भगवान की कसम, कल मैं नेय्यप्पम लाऊंगी।"

मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं। मैने कहा—"मुझे तुम्हारा नेय्यप्पम नहीं चाहिए।"

उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा—"क्या नहीं चाहिए? सच बोलो।"

मैंने लापरवाही दिखाई। मैं इसकी परवाह नहीं करता कि वह दे या न दे।

थोड़ी देर बाद मैंने पूछा—"क्या तुम्हारे पिताजी को पता नहीं लगेगा?"

"पता लगे तो क्या? तुम्हारी लाई कोई चीज क्या मैं खाती हूं—जब खाऊं तभी तो आपत्ति करेंगे।"

मुझे उससे जरूर ईर्ष्या हो रही थी। वह नेय्यप्पम और पायसं मन-भर खा सकती है। चार सब्जियों के साथ पेट-भर खाने के बाद ऊपर से ये दोनों। कोई किसी तरह की आपत्ति नहीं उठाते। भाग्यशाली लड़की! मैंने मन-ही-मन कहा कि अगर यह हैसियत मेरी होती तो कितना अच्छा होता! कदली फल * मिलाकर तैयार किया नेय्यप्पम जब याद आया तब मुंह में पानी भर आया।

एक बार मैंने घर पर अम्मुक्कुट्टी और उसके नेय्यप्पम के बारे में चर्चा की तो मां ने गुस्से में आकर कहा—"तेरे पिता नंबूदिरि (केरलीय ब्राह्माण) नहीं हैं।

ठंडे पड़े चूल्हे के आगे बैठकर समय बिताते समय औरों की धन-दौलत की चर्चा करना बिल्कुल जरूरी नहीं था।

अगर मेरे पिता भी नंबूदिरि होते तो मुझे भी जी भर नेय्यप्पम और पायसं खाने को मिलता। तब घर के पास कोई मंदिर होता। मंदिर में एक पुजारी एंब्रान (तुलू ब्राह्मण) होता। भगवान को भोग में चढ़ाया नेय्यप्पम आदि जब घर लाते तो मैं ही पहले लेकर खाता। पिताजी पान की डिबिया लिए बेंच पर बैठे रहते। पिताजी गोरे व हट्टे-कट्टे हैं। चोटी है, जनेऊ भी है। मेरे नेय्यप्पम उठाते समय पिताजी यदि कुछ कहते तो ...

"क्या सोच रहे हो?"

प्रश्न सुनकर मैं पीला पड़ गया। सोचा तो था बहुत कुछ—पर सोची बातों में से कोई उससे कही नहीं जा सकती।

जानम्मा टीचर और उनके पीछे सिर पर एक बड़ा टोकरा लिए हुए एक लड़का आया।

---

* बढ़िया किस्म का केला

अम्मुक्कुट्टी मेरे कानों में फुसफसाई—"मुझे पता है, टीचर यहां से क्यों जा रही हैं।"

मैंने पूछा—"क्या मुझे नहीं बताओगी... ?"

उसे संकोच था—"तो ..."

उसने पूरी बात नहीं बताई।

कोई मजाक याद करते ही हंस पड़ी।

मेरा धीरज जब जवाब देने लगा तब उसने कहा—"जानम्मा टीचर और राघवन मास्टर एक-दूसरे से प्यार करते हैं।"

मैं उसका मतलब समझ नहीं सका। टीचर कितने ही लोगों से प्यार करती होंगी? क्या हमसे प्यार नहीं है?

मेरा शक सुनकर अम्मुक्कुट्टी बोली—"तुम बुद्धू हो। तुम्हारी समझ में कुछ नही आएगा।"

मैं ऐसी बातें समझने का आग्रह भी नहीं करता था।

आखिर उस होशियार बालिका ने मुझ बुद्धू को समझाया—"जानम्मा टीचर निचली जाति की हैं। अब आया समझ में? ..."

तब तक मेरा ख्याल था कि कोई किसी से भी प्यार कर सकता है। मां को, बाप को, कुत्ते को—बिल्ली को, सब को। अपने घर में मैं एक छोटी बिल्ली को सबसे अधिक चाहता था। अम्मुक्कुट्टी की बातों से ही मैं समझ सका कि जाति के अनुसार ही प्रेम करना चाहिए। और कोई बताता तो संभव है मैं यकीन करता, पर अम्मुक्कुट्टी के कहने के कारण यकीन नहीं आया। वह झूठ बोला करती है। वह मुझे नेय्यप्पम ला देने का वादा करती रहती है न?

शाम को छुट्टी देने से पहले रामन मास्टर आए। उन्होंने दरवाजे की लोहे की सांकल जोर से खींचकर जोर से बोलते हुए सब को बताया—"आज घंटी बजते ही तुम लोग तुरंत भाग न जाना। वहां रहना। सबको बिस्कुट और केले दिए जाएंगे। तुम लोगों की जानम्मा टीचर स्कूल से जा रही हैं..."

कक्षा में खामोशी थी।

मुझे संदेह हुआ। क्या राघवन मास्टर को प्यार करने की वजह से जानम्मा टीचर को भेज रहे हैं? तब तो प्यार करना अपराध साबित होगा। मैं कितने ही लोगों को चाहता हूं! क्या अम्मुक्कुट्टी को पता है कि मैं उसे चाहता हूं। अगर पता लगे तो...

संदेह एक-एक कर बढ़ते रहे।

किसी से पूछने की इच्छा हुई। परंतु किससे पूछं? अम्मुक्कुट्टी इसके लायक नहीं। फिर कौन?

मेरे मन में कोई नाम नहीं सूझा। मैंने मन को समझाया कि बड़े होने पर इन सब सवालों का जवाब समझ लूंगा।

घंटी बजने पर कुछ भीड़ बढ़ी। हमें हुक्म दिया गया कि बेंचों की क्रमपूर्ण व्यवस्था

करने तक हॉल के बाहर खड़ा रहना चाहिए। मैं अपनी जगह जा बैठा तो अम्मुक्कुट्टी नहीं मिली। वह और कहीं बैठी थी।

तीन-तीन बड़े बिस्कुट और दो-दो केले सबको मिले।

मैंने इतने अच्छे बिस्कुट पहले कभी नहीं खाए थे। सब के सब मुंह में ठूंस लिए। भूखा तो था ही। बिस्कुट लार में गीले हुए और दांतों की दरार में जमा हो गए। मैं उन्हें जीभ की नोक से हटाने की कोशिश करता रहा। जानम्मा टीचर कुछ कह रही थीं। बिस्कुट खाने की व्यस्तता में मैंने कोई बात नहीं सुनी। रूमाल से उनको आंसू पोंछते देखा।

रामन मास्टर ने कहा कि सब जा सकते हैं।

बाहर निकलने पर अम्मुक्कुट्टी को देखा। उस भीड़ में वह मुझे खोज रही थी। यही उसने कहा।

पुस्तक, स्लेट व पेटी सब छाती से सटाए वह पीछे चली और मैं आगे। हम दोनों घर की तरफ बढ़े। हमने बातें बहुत कम कीं।

वह कुछ सोचती-सी नजर आई। मैंने सोचा कि जानम्मा टीचर के चले जाने का दु:ख था।

फिर भी मेरा मन तब जानम्मा टीचर से दूर हो गया था।

जब हम अम्मुक्कुट्टी के घर के पास पहुंचे तब मैने उसे हाथ खींचकर रोका और एकाएक पूछा—"क्या तुम बता सकती हो कि इस वक्त मेरे मन में क्या है ?"

उसने इनकार में सिर हिलाया।

"सोचकर बता..."

उसने सोचने का कष्ट नहीं उठाया। आखिर मैंने स्वयं बताया—"एक बैठक में वैसे कितने बिस्कुट खा सकेंगे।"

डिजाइनवाले बड़े-बड़े बिस्कुट की शक्ल मेरे मन से दूर नहीं हुई थी।

उसने उसमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

जब मंदिर के सरोवर के तट पर हम पहुंचे तो अम्मुक्कुट्टी किसी की प्रतीक्षा करती-सी बोली—"तुम आगे चलो।"

मैंने पूछा—"कल ?"

"नेय्यप्पम"।

"फिर"?

"पायसं"।

"अवश्य ?"

"अवश्य।"

जीवन की सारी समस्याओं से मुक्त व्यक्ति की तरह मैं सीटी बजाता चला। कुछ कदम आगे बढ़ने के बाद मैंने, पता नहीं क्यों, यों ही पीछे मुड़कर देखा। तब वह नजारा देखा—तीन बिस्कुट चांदी की छोटी तश्तरियों की तरह उस तालाब के पानी की तरफ उड़

रहे थे।

मुझे देखते पाकर अम्मुक्कुट्टी ने सिर झुकाया।

मैं उसका भाव समझ गया। फिर क्षण-भर भी रुके बिना मैं तेजी से घर की ओर चला।

उस दिन हमारे घर की कंजि (चावल का दलिया) बाजार के सब से घटिया चावल की थी। गंधाते चावल का एक कौर खाया। उस समय मैं चिंता में डूबा हुआ था।

सदियों से लोगों के संग्रह किए हुए ज्ञान का स्रोत मेरे हृदय में फूट पड़ा था।

मां ने पूछा—तू क्यों कंजि को सामने रखकर यों बिसूर रहा है ? किसी-किसी को इतना भी नसीब नहीं होता।''

मैंने सोचा कि अम्मुक्कुट्टी के फेंके हुए बिस्कुटों की बात मां से कहूं। लेकिन कहा नहीं।

अम्मुक्कुट्टी ने क्यों उन बिस्कुटों को नष्ट कर दिया ? अगर मुझे देती तो मैं खा लेता।

उस घटना को हुए आज चौदह वर्ष बीत चुके हैं।

जीवन के संबल की खोज में मैं बालपन के सपनों से बहुत दूर जाने को मजबूर हुआ। बहुत-सी बातें मैं भूल गया हूं। फिर भी मन में एक बात बहुत दूर तक बनी रही—उस दिन अम्मुक्कुट्टी के खाए बिना फेंके हुए तीन बिस्कुट! उसकी चिंता हमेशा मुझे बेचैन कर रही थी।

आज सवेरे अप्रत्याशित रूप से एक खुशखबरी सुनी। मेरी पुरानी दोस्त अम्मुक्कुट्टी का ब्याह संपन्न हुआ है। उसने जाति या धर्म की परवाह किए बिना अपने प्रिय पुरुष को पति के रूप में स्वीकार किया है।

मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं—यह नया परिवार सुखी रहे।

यह पेड़ नहीं फलता

थोड़ी देर सोचते रहने के बाद उस आदमी ने यादों की झोली से कोई घुटन चुनते हुए कहा—"यह पेड़ नहीं फलता।"

उस बूढ़े सज्जन की आवाज रूखी तो थी, फिर भी उसमें अंतर्मन का दर्द था। उसने उसके बारे में आगे और कुछ नहीं कहा। फिर भी जब वह लालटेन जलाने को झुका तब जिंदगी के तजुर्बों के निशानों से भरा वह मुखमंडल मैंने स्पष्ट देखा। उसकी बूढ़ी आंखों से आंसू की बूंदें टपक रही थीं।

दूर पहाड़ियों से ठंडी हवा तेजी से बहने लगी तो मैंने अपना बड़ा ओवरकोट लेकर पूरा शरीर ढंक लिया। क्रमश: फैलते और घने होते अंधकार में आंगन का विशालकाय जामुन का वृक्ष आंखों से ओझल हो गया। हम दोनों की परछाइयां लालटेन की मंद रोशनी में प्रेतों की तरह पसरी हुई थीं।

वह एकांत दृश्य हर किसी को डरा सकता था। मगर मुझे बड़ा मजा आया। एक हिम्मतवर यात्री को ऐसा ही अनुभव हो सकता है। मैं उस पहाड़ी इलाके में बिना किसी खास मतलब के पहुंचा था। रास्ते में मैं बस से उतरकर अकेले चल पड़ा। वहां मैं इसी ख्याल से पहुंचा था कि वहां डाक बंगला होगा। किंतु वहां लोगों की बस्ती का कोई निशान नहीं दीख पड़ा। समय संध्या के नजदीक होता जा रहा था। मैंने दरवाजा खटखटाया तो वह वृद्ध बाहर आया।

मुझसे भूल हो गई। वह डाक बंगला नहीं था। वहां लंबे अरसे से कोई नहीं रहता। कभी बगल के बागान के मैनेजर लोग उसमें रहते थे। बूढ़े से—जो उस भवन का पहरेदार भी था—इतनी जानकारी मिली।

मैंने दर्याफ्त किया कि क्या मैं उस रात को वहां ठहर सकता हूं। इस पर पहरेदार ने बड़ी देर तक मेरी तरफ टुकुर-टुकुर देखा, फिर लंबी सांस भरकर कहा—"जो भी यहां रहे, वे भयभीत हुए हैं। आप लोगों में हिम्मत है तो..."

उसकी आवाज मानो किसी कुएं की गहराई से आ रही थी। मैं धीरे से मुस्कुराया। मैं तो श्मशान में भी रहा और सोया हूं। मेरे लिए हिम्मत का क्या सवाल?

मुझे अच्छी तरह याद है। गत वर्ष माघ महीने की पूर्णिमा थी। मैं स्नान कर भीतर के कमरे में अपना बिस्तर लगाने के बाद थोड़ी देर बातें करने के इरादे से बरामदे में वृद्ध के पास जा बैठा। तभी दूर चारों तरफ फैला हुआ वह विशालकाय जामुन का वृक्ष मेरी नजर में पड़ा। जामुनफल के पकने का मौसम था। याद आया कि लड़कपन के दिनों में हमारे अहाते में हम लोग पेड़ को झुला-झुलाकर जामुन गिराते थे। किंतु यह जामुन का पेड़ फलों से शून्य था। एक भी फल नहीं लगा था उसमें। यह देख मेरे मन में निराशा

हुई। पूछ-ताछ करने पर वृद्ध ने कहा—"यह पेड़ नहीं फलता।"

"क्या उस पेड़ पर कभी फल नहीं लगे हैं?" मैंने फिर से पूछा। वह वहां लंबे अरसे से रहता है। इसलिए उसे पता होगा। परंतु शायद मेरा सवाल उसने न सुना हो। उसने सही जवाब नहीं दिया। किसी गहरी चिंता में लीन या दूर दृष्टि डाले बैठा रहा। शायद वह अतीत की कोई घटना स्मरण करता हो।

उस समय वहां अरबी दंत-कथाओं का-सा वातावरण था। पहाड़ी की ढाल का पुराना मकान। अंधेरा। सुनसान। वहां पहुंचे परदेशी यात्री का स्वागत करने के लिए एक बूढ़ा चौकीदार ...

अचानक मेरी तरफ मुड़कर उसने पूछा—"आपने मुझसे क्या पूछा— ?... यह पेड़ क्या कभी नहीं फलता था?... हां, एक जमाने में इस पेड़ की डाल-डाल फलों से लदी रहती रहती थी। मगर वह अभिशप्त घटना... उसके बाद इस पर कभी फल नहीं लगा। आगे भी यह पेड़ नहीं फलेगा। पेड़ का मन भी व्यथित हुआ होगा।" कहकर उसने जोर से ठहाका लगाया। लालटेन की मद्धिम रोशनी में उसके दांत चमक उठे। वह पागल-सा लग रहा था।

मैं सन्न रह गया। वह उस समय भी कुछ याद करके हंस रहा था। वह बार-बार बड़बड़ाता रहा। आखिर वह उठा। हवा में हिलते अस्थि-कंकाल की तरह मेरी तरफ चला आया और चेहरे को ध्यान से देखते हुए कहा—"अब भी, इतने वर्ष बाद भी, वह हर रात को इधर इस पेड़ के नीचे आया करता है। इसीलिए मैंने कहा कि यहां कोई नहीं ठहरता। समझे?...वह किसी को कोई कष्ट नहीं देता। फिर भी लोग उससे डरते हैं। आपका भी चेहरा पीला पड़ रहा है..."

उसने सच कहा था। मैं भयभीत हो गया था। उसने उस पेड़ से जुड़ी मानव-आत्मा के विषय में कहा था। एक प्रेतकथा का प्रारंभ! कैसी होगी वह अमावस की रात? पहाड़ के ऊपर से सांय-सांय बहती ठंडी हवा। सड़क के पास एकांत भवन के बरामदे में बैठा मैं जब उसके विषय में सोचने लगा तब मेरा तन-मन दोनों सिहर उठे।

उसकी तेज-भरी आंखें मेरी अंतरात्मा में धंसती गईं। उसने एक हिपनोटिस्ट की तरह मुझे मोहित करके मेरी अनुमति के बिना ही कहना शुरू किया—

"आप आज रात को इस घर में ठहरे हैं। इसमें एक जमाने में बागान के मैनेजर लोग रहते थे। उस दिनों गोरे बाबू मैनेजर होते थे। बागान उनके थे। आगे चलकर स्वदेशी बाबू इस काम पर आने लगे। तब इसके कुछ हिस्से को तोड़कर मकान को छोटा बनाया गया।

"यहां आए पहले स्वदेशी मैनेजर बाबू से जुड़ी यह कहानी सुनाने जा रहा हूं।

"शायद अब वे जिंदा नहीं होंगे। किसी के हाथ उनकी कहानी खत्म हुई होगी। उनके समान कठोर हृदय व्यक्ति शायद ही मिले। उन्हें पता नहीं था कि प्यार क्या होता है? कर्मचारियों को वे बहुत सताते थे। उसे जाने दीजिए। वे अपनी पत्नी और बच्चों को भी...

"आप को सुनकर बुरा तो लगेगा। मगर ये मेरे अनुभव हैं।

"उन दिनों यहां एक बटलर था। देखिए उधर! वही उसका घर था। अब वह टूट-फूटकर ढह चुका है। बटलर बड़ा सीधा और ईमानदार था। बड़े साहब तक उसके कौशल की तारीफ किया करते थे।

"नये मैनेजर के आने से उसके बुरे दिन शुरू हुए। रात को वह पल-भर के लिए भी आंखें झपका नहीं पाता था। हमेशा शराब और हंगामा! बटलर को उसकी भी शिकायत नहीं थी। वह ऐसे बर्ताव को बिना बड़बड़ाए सहन करना सीख चुका था।

"इस जामुन के पेड़ ने ही उसका सत्यानाश किया। इसी पेड़ ने उसका जीवन तबाह कर डाला। लेकिन...नहीं... मैं इस पेड़ को क्यों दोष दूं—बेचारा! बेकसूर पेड़!"

उसने अचानक कहानी रोक दी। उस वृद्ध की आंखों की पुतलियां गोलाकार घूमने लगीं। उसकी मुखाकृति देखकर मुझे अहसास हुआ कि वह किसी खास बात पर ध्यान दे रहा है। धीरे से उठकर मानो सपने में उसने मुझसे पूछा—"क्या आपको कुछ सुनाई दे रहा है? "

मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मैंने नकारात्मक जवाब दिया। असल में मुझे कुछ सुनाई भी नहीं दे रहा था।

उस वृद्ध की मुखाकृति में परिवर्तन आ गया।

"लो! वह आ रहा है। यह सीटी उसी की है। वह बालक अपने साथी को बुला रहा है।"

मेरे मुंह से अनजाने सवाल निकल गया—"कौन-सा बालक?"

मेरी तरफ देखे बिना ही उसने जवाब दिया।

"बटलर का बेटा।"

एक गहरी खामोशी चारों तरफ छा गई। हम दोनों मौन थे। मेरा मन एक तरह की शिथिलता महसूस करने लगा। भीतर जाकर सोने की इच्छा हुई। लेकिन हाथ-पांव भारी-से लग रहे थे। उठना कठिन था।

रात की चिड़ियां जामुन के पेड़ के ऊपर सम्मिलित रूप से चहचहाईं। उनकी चहचहाहट के बावजूद उस वृद्ध की अस्पष्ट बड़बड़ाहट सुनाई दे रही थी।

"वह पेड़ पर पत्थर फेंक रहा है। काहे को? जब उसमें एक भी फल नहीं। क्या उसे पता नहीं कि उसके जाने के बाद वह पेड़ नहीं फलता?"

चिड़ियों का कलरव थमने पर वह चिंता में डूब गया। मुझे पता नहीं कि वह कितनी देर तक मौन रहा। दूर से एक घायल मानव आत्मा की सिसकियों की-सी आवाज आ रही थी। वह धीरे-धीरे दूर होती गई।

आज मेरा अंदाज है... शायद वह केवल अहसास था। फिर भी यह सच है कि ऐसा अनुभव हुआ था।

थोड़ी देर के विराम के बाद उसने कहानी जारी रखी—

"पेड़ पर फल लगने की देर थी। फिर यहां चैन नहीं रहता था। पास और दूर

रहनेवाले सारे-के-सारे लड़के उसके नीचे जमा होते। उनकी पूरी वानर सेना होती थी। दो सरदार थे—बटलर का बेटा और मैनेजर का लाड़ला। कोई पेड़ पर चढ़ नहीं सकता था। वे पत्थर मारते थे। रात-दिन बिना विश्राम के वे पत्थर मारते।

''मैनेजर को पेड़ पर पत्थर मारना तो दूर, उसके नीचे बालकों का जमा होना तक नापसंद था। एकाध बार उन्होंने बंदूक दिखाकर उन्हें धमकाया भी था। मगर उन बच्चों का जोश उससे कम नहीं पड़ता था। वे अपने कार्यक्रम चालू रखते थे।

''बालकों को भगाने का काम भी बटलर पर पड़ा। उनको भगाना ही नहीं, सजा भी देना था—यह मैनेजर का हुक्म था। बटलर बड़े संकट में पड़ा। वह बच्चों से बड़ा प्रेम करता था। इसके अलावा उस दल में उसका बेटा भी था, खुद मालिक का बच्चा भी। उनका क्या किया जाए?

''मैनेजर को काफी दिनों बाद ही पता लगा कि उस वानर-सेना में उनका लाड़ला भी है।

''एक दिन दोपहर को बालकों ने जामुन पर पथराव शुरू किया तो बटलर की राह देखे बिना मैनेजर खुद बेतहाशा दौड़ आए। बालक तीर की तरह तेजी से चारों तरफ फुर्र हो गए। सिर्फ एक बालक दौड़ न सकने से वहीं बच गया। वह मैनेजर का बेटा था। मैनेजर ने सोचा नहीं होगा कि जिस काम से मैंने लोगों को मना किया वह मेरा बेटा ही करेगा। उनका क्रोध अंधा हो गया। उन्होंने एक हाथ से लड़के को उठाकर उसे बुरी तरह पीटा। बालक की रुलाई बाप के दिल को पिघला नहीं सकी।

''बेटे को घसीटते वे अपने घर की तरफ जाने लगे। तभी वह घटना हुई। वह पत्थर मैनेजर के माथे पर कहीं से जोर से आ लगा। आंखों की तरफ बहता खून पोंछकर चोट खाई नागिन की तरह उन्होंने मुड़कर देखा कि पत्थर किसने मारा? तो, कुछ गज दूर एक लड़का खड़ा हंस रहा था। उसे देखकर मैनेजर का खून खौल उठा।

''वह कौन था?... उस बटलर का लड़का!...

''मैनेजर अपने बेटे को छोड़ आगे लपके। पर बालक छूमंतर हो गया था। उसकी उम्र सिर्फ दस साल की थी। फिर भी कोई वन-पर्वत उसके पैरों के लिए नया नहीं था।

''शायद उस बालक ने सोचा नहीं होगा कि उसके काम का नतीजा क्या हो सकता है। अपने दोस्त को मारनेवाले दुष्ट पर उसने पत्थर दे मारा। बस, बालक ने इससे ज्यादा कोई महत्त्व नहीं दिया होगा। काश वह अपने काम को पहचानता!...

''क्रोध से अंधे मैनेजर ने फौरन बटलर को बुलवाया। उस दिन उन्होंने उसे दुनिया की सारी गालियां सुनाईं। हुक्म दिया कि बेटे को मेरे सामने फौरन हाजिर करो।

''मगर वह बालक कुछ दिनों तक वहां कहीं दिखाई नहीं दिया। उसके बाप को भी पता नहीं कि वह बालक कहां चला गया। अगर नजर पड़ता तो बटलर जरूर उसे मैनेजर को सौंपता। बालक से प्रेम की कमी के कारण तो नहीं, नौकर का फर्ज निभाने के लिए।

''यकीन न आने पर मैनेजर खुद एकाध बार बिना सूचना दिए बटलर के घर पर जा

धमके। उनका शक था कि बालक को कहीं छिपा रखा होगा। उनकी जांच-खोज से भी कोई लाभ नहीं हुआ।

"एक रात अपना काम पूरा करके बटलर घर लौट रहा था कि रसोईघर के पीछे पौधों के झुरमुट में किन्ही दो व्यक्तियों की बातचीत की भनक सुनाई पड़ी। दबे पांव पास जाकर देखा तो आंखों पर यकीन नहीं आया। चांदनी रात में मैनेजर का बेटा और उसका अपना बेटा जमीन पर पालथी मारे जामुन के फल बांट रहे थे। बटलर को देखकर वे नहीं घबराए। सिर्फ हंस पड़े।

"बार-बार सोचने पर भी उसे उसका मतलब समझ में नहीं आया। उन दोनों बालकों की हैसियत का अंतर तो दूर, दोनों की भाषाएं अलग-अलग थीं। फिर भी कैसी घनिष्ठता थी!

"जब पता लगा कि वे दोनों हर रात मिलते थे तब बटलर का दिल जोर से धड़कने लगा। मैनेजर के कानों में कहीं यह बात पड़ गई तो सर्वनाश हो जाएगा। बेटे को छिपाने और मैनेजर के बेटे को बहकाने का जवाब देना पड़ेगा।

"उसने भगवान से प्रार्थना की कि मैनेजर को इसकी खबर न लगे। वह असल में दर्द से तड़प रहा था। बेटा कभी-न-कभी उस आदमी के सामने पड़ जाएगा। सामने पड़ने पर वह शैतान कुछ भी कर सकता है।

"हर क्षण भय और व्यग्रता की भट्ठी में झुलसते हुए उसको अधिक दिन इंतजार नहीं करना पड़ा। दूसरे ही दिन सारा फैसला हो गया।

"शाम रात में बदल रही थी। जामुन के नीचे किसी को धीमी आवाज में सीटी बजाते सुनकर बटलर कांप उठा। वह जरूर उसका बेटा होगा। उसने सोचा—मैनेजर के आने में देर लगेगी। शायद वह कुछ पहले ही आया होगा। वह पिछवाड़े का दरवाजा खोलकर पेड़ की तरफ दौड़ा।

"मगर उसने देर कर दी थी। उसकी नजर पड़ने से पहले ही मैनेजर की गिद्ध-दृष्टि उसे देख चुकी थी।

वह बेचारा एक मूर्ति-सा खड़ा रह गया। वस्तुत: उसकी जान तराजू पर झूल रही थी। मैनेजर ने जेब से पिस्तौल निकाली। वे हमेशा पिस्तौल लेकर चलते थे। उनकी इस्पाती मुट्ठी में पड़कर तिलमिलाता बालक उसे देखकर खामोश हो गया। उसका चेहरा पीला पड़ गया। लेकिन मैनेजर ने पिस्तौल जेब में ही डाल ली। पर उसे यों ही नहीं छोड़ा। वह बालक और बालक का बाप टुकुर-टुकुर देखते रहे कि बालक की गरदन के ऊपरी हिस्से में एक ठोंक लगाकर वे चले गए।

"बटलर पास पहुंचा तो बालक मरा नहीं था। वह पेड़ के नीचे बेहोश पड़ा था। पिता पुत्र को लेकर घर चला तो चिड़ियां रो उठीं। जामुन ने फल टपकाए। वह उनका सबसे प्यारा मित्र था।

"उसी रात बालक मर गया। मरने के पहले कुछ शब्द उसके मुंह से निकले। सिर्फ

दोस्त तथा जामुन के फलों के बारे में। उसका बाप उन पर ध्यान नहीं दे सका। उसका दिमाग बहक गया था।

"उस घटना के बाद कितने ही साल बीत गए! उसके बाद इस पेड़ पर कभी फल नहीं लगा। आपको आश्चर्यजनक लगता होगा। मगर उसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। हर रात वह यहां आता है। बहुत लोगों ने उसकी सीटी और पथराव की आवाज सुनी है।"

पहरेदार ने वह कहानी रोकी। मैं कुछ बातें पूछना चाहता था। मुझे कहानी की संभावना पर ही संदेह हुआ। एक छोटे बालक की छोटी-सी बात पर एक बड़ा आदमी क्या ऐसी सजा देगा?... पर पता नहीं क्यों, मैंने यह सवाल नहीं पूछा। यह भी नहीं पूछा कि उस मैनेजर ने उसके बाद क्या किया।

कितने ही वर्ष पहले की वह कहानी उस वृद्ध ने बड़ी लगन से सुनाई। उस वृद्ध के मुंह की तरफ नजर डाली तो मुझे अकारण भय-सा अनुभव हुआ। अपनी अरक्षित दशा से डर भी लगा।

मैंने आंखें बंद कर लीं। तेज हवा बह रही थी। वह जामुन का पेड़ और मकान—सब कांप उठे। लालटेन अपने-आप बुझ गई। मुझे लगा कि कोई ठहाका सुनाई पड़ा। किसी के तेज कदम बढ़ाने की आहट भी सुन पड़ी। अंधेरे में मैंने टटोलकर देखा तो वह आदमी उधर नहीं था। अपनी पूरी ताकत लगाकर मैंने जोर से पुकारा—

"आप...कहां गए... ?"

उसका जवाब बड़ी देर से आया!

"मूर्ख मानव! मैं जा रहा हूं। तुमने मुझे नहीं पहचाना। मैं ही वह अभागा पिता हूं। मेरा ही बेटा इस पेड़ के नीचे मर गया था...।" वह आवाज चारों तरफ गूंज उठी।

उन शब्दों ने मेरी अंतरात्मा को चोट पहुंचाई थी। मैं उठा और बड़ी मुश्किल से अंदर जाकर लेटा। पर मुझे नींद नहीं आई। मन को व्यथित किए उस एकांत में मैं हर क्षण मरता व जीता रहा।

सवेरा हुआ तो मन में ढाढ़स बंधा। प्रभात की किरणें उस पर्वतीय प्रदेश को जब सहलाने लगीं तब मैं बोरिया-बिस्तर लिए बाहर आया। रात की घटनाएं दिमाग में एक बुरे ख्वाब की तरह मंडरा रही थीं।

बरामदे में मैंने लालटेन नहीं देखी। बदन के रोंगटे खड़े हो गए।

आंगन से उतरकर मैं सड़क को जाती पगडंडी पर पहुंचा तो मुड़कर देखा। निश्छल बालक का साथी जामुन का पेड़ वहीं खड़ा था।

उस पेड़ पर एक भी फल नहीं था। वह पेड़ नहीं फलता।

भविष्य की ओर

गाड़ी चलने लगी तो राजन ने सोचा—गाड़ी जबलपुर आधी रात को पहुंचेगी। बड़ा भाई स्टेशन पर आ जाए तो सुविधा होगी। नहीं तो परेशानी होगी। इससे पहले भी वह उस शाहर में आया है। मगर राजन के बड़े भाई ने हाल ही में घर बदला है। उसकी याद करके उसके चेहरे पर मुस्कान आई। बड़े भैया कैसे मामूली बातों पर पैसे बहा देते हैं! रहने का घर बार-बार बदलते हैं। फिर भी राजन ने बहुत दिनों से बड़े भाई से पैसे नहीं लिए है। उसे इस पर गर्व अनुभव हुआ। ऐसे मामले में वह आजाद रहा है।

डिब्बे की भीड़ कम होती गई। एकाध स्टेशन बाद ही वह आराम से बेंच पर पांव सीधा करके लेट सका। राजन और उसके नौकर के अलावा डिब्बे में और दो ही यात्री थे। एक था सिपाही और दूसरा अधनंगा बूढ़ा देहाती। सिपाही कोई काम न रहने से अपनी बेल्ट के पीतल के बटनों को उंगलियों से मसल रहा था। बूढ़ा अपनी रंगीन पगड़ी खोलकर उसके छोर में बंधे सुरक्षित सिक्के गिनने में व्यस्त था।

उन लोगों के कार्य देखकर राजन को मजा आ गया। स्कूल के दिनों में वह सिपाही होना चाहता था। मगर बाद में यह संभव नहीं हुआ। आज सिपाही के पद का सारा जादू नष्ट हो चुका है। राजन को इस पर खुशी हुई कि बंदूकवाले हाथ में घट्ठा पड़े सिपाही से हल धारण किए बूढ़े की हथेली में अधिक ताकत रहती है।

बूढ़े ने फिर से सिर पर पगड़ी बांध ली और पान से रंगे मुंह को उंगलियों से पोंछते हुए बोला—"लगता है, शकरकंद का भाव और बढ़ेगा।"

उसकी आवाज में हर्ष और उल्लास था। राजन को उसका मतलब मालूम हो गया। यह बूढ़ा अपनी मेहनत के फल की कीमत बढ़ने से खुश है। राजन उसको बधाई देने की मुद्रा में मुस्कुराया। सिपाही बेल्ट पर हाथ रखे सिर्फ ताकता रहा।

अपना स्टेशन आने पर बूढ़ा उतर गया। उस कुवेला में उस स्टेशन पर कोई यात्री नहीं चढ़ा। राजन ने खिड़की से बाहर देखा। प्लेटफार्म बिल्कुल सुनसान पड़ा था। गाड़ी चलने लगी तब बाहर खड़े टिकट बाबू डिब्बे के भीतर आए। एक अधेड़ आदमी पुस्तकों का एक बंडल कांख में दबाए बड़ी आसानी से दरवाजा खोल रहा था। लगता था, यह आदमी जिंदगी भर गाड़ी में ही रहा होगा।

टिकट बाबू का आगमन सिपाही को पसंद नहीं आया। चेहरे पर नफरत लाते हुए उसने वर्दी की जेब से पास निकालकर उसे दिखाया।

राजन का नौकर छोटा लड़का गाड़ी में जब से चढ़ा तभी से एक कोने में खड़ा था। कोई यात्री सिगरेट का खाली पैकेट नीचे डाल गया था। वह छोकरा उसकी तस्वीर देखने में मशगूल था। बाबू ने उसकी पीठ थपथपाकर टिकट मांगा।

लड़के को यह कोई अजीब बात नहीं लगी। वह राजन की ओर उंगली से इशारा करके अपने मनोरंजन में व्यस्त हो गया।

राजन ने अपना और नौकर दोनों के टिकट निकालकर बाबू को दिए। छात्रावस्था की साहसी रेल यात्राएं उसे याद आईं। तब टिकट रखने के बावजूद बताता नहीं था। न होने पर भी टिकट होने का नाटक करता। मगर आज ऐसे चमत्कार बेकार हैं। जमाना बदल गया है।

दोनों टिकट लेकर दस्तखत कर लौटाने के बाद बाबू ने राजन से पूछा—"उसका टिकट?"

टिकट बाबू का मतलब नौकर से था।

इसका मतलब राजन की समझ में नहीं आया। क्या नया कानून है कि एक आदमी का टिकट दूसरे को नहीं रखना चाहिए? शायद शराब के नशे में पूछा हो। ऐसा सोचकर राजन शांत हुआ, बड़े अदब से कहा—" मैंने आपको दो टिकट दिए थे। अब फिर से देखिए।" राजन ने टिकट लेकर उसकी तरफ बढ़ाए।

"सो तो मुझे मालूम है। एक टिकट आपका, एक टिकट आपके साथ आई औरत का। अब उस लड़के का आधा टिकट और चाहिए।" राजन को टोकते हुए टिकट बाबू ने कहा। वे एक जासूस की गंभीरता की नकल कर रहे थे।

राजन चौंक पड़ा। वह क्या सुन रहा है? उसके हाथ में एक टिकट एक स्त्री का है! यह आदमी बिल्कुल पागल है। वरना ऐसी बातें कहने की हिम्मत कैसे करता? पागल बूढ़ों को सर्विस में रखनेवाली सरकार को उसने कोसा। देखिए! कैसी आफत में ये लोग डाल देते हैं?

राजन के चेहरे की बदलती रंगत देख टिकट बाबू ने कहा—"आप शायद इनकार करेंगे। अक्सर ऐसा होता भी है। मगर ..."

राजन गरम हो गया। उसने टिकट बाबू को वाक्य पूरा करने नहीं दिया।

"मेरे साथ कोई औरत नहीं आई है। अगर आप बकवास करेंगे तो मैं आपके नाम पर मुकद्दमा दायर करूंगा। याद रहे..."

अधेड़ कर्मचारी उस धमकी से बिल्कुल नहीं डिगा। उसके कान ऐसी बातें सुन-सुनकर पक चुके हैं।

फिर भी राजन की विजयी नजर देखकर उससे रहा नहीं गया।

"आप स्वर्ग जाइए या नरक! उससे मेरा कोई मतलब नहीं। मगर इस बालक का आधा टिकट आपसे 'एक्सेस' वसूल करूंगा ही। यह नौकरी कल या परसों शुरू नहीं की। ऐसे कितने ही तिकड़म देख चुका हूं।

"लड़के...!"

नौकर और टिकट बाबू को बारी-बारी से देखकर राजन ने ठहाका लगाया—"मेरी बात पर आप गुस्सा न करें। मुझे लगता है कि आपकी उम्र अब सर्विस के लायक नहीं

रही, देखने की शक्ति भी आपकी आंखों में नहीं है। आपके अंदाज से भी यह लड़का कई वर्ष बड़ा है।''

राजन की बात पर उसने ध्यान नहीं दिया। असल में भूल टिकट बाबू की थी। वही नहीं, हर किसी से ऐसी भूल हो सकती है। उस लड़के के चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ नहीं थी। कोई नहीं मानेगा कि वह अठारह वर्ष पार कर चुका था। वह राजन के घर के नौकरों में सबसे बड़ा है। मां ने अपनी बेटी की सहायता के लिए उसे भेजा है। गांव से शहर ले आते समय भी राजन ने उसका पूरा टिकट लिया था।

उस समय राजन की भाभी हंसी उड़ा रही थी। राजन का जवाब था—जब हाथ में पैसे हैं तब झूठ कहने या करने की जरूरत नहीं।

राजन समझ गया कि कहीं कोई गड़बड़ी हुई है। अब और नाटकीय प्रसंग उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजन ने टिकट बाबू से पूरा विवरण मांगा। अभियुक्त की हैसियत से उसे सब बातें जानने का हक है।

टिकट बाबू ने राजन को जो सूचनाएं दी वे चौंकानेवाली थीं। वह कोई बुढ़िया नहीं, सत्रह साल की रमणी ही है। वह भी इंदौर से ही गाड़ी में बैठी है जहां से राजन बैठा है और उस स्त्री को देखने पर नहीं लगता कि झूठ बताएगी। बगलवाले डिब्बे में है। अगर राजन चाहे तो अगले स्टेशन में गाड़ी रुकने पर साबित कर सकता है कि उसकी ऐसी कोई साथिन नहीं है। उसमें कोई आपत्ति भी नहीं है।

राजन ने मान लिया।

खंडवा आने पर उस युवती को देखेगा।

आनेवाली घटनाओं की बात सोचकर चिंता में खोया राजन टिकट बाबू की लेक्चरबाजी पर ध्यान नहीं दे रहा था। कुछ समझ में न आने के कारण नौकर सिर्फ ताकता रहा। उसे किसी तरह इतना तो पता लगा कि बात उसी के विषय में चल रही है। सिपाही इन सब बातों में कोई दिलचस्पी लिए बिना मुंह फुलाए बैठा था।

चांदनी रात में गाड़ी अपनी गति से चली जा रही थी। दूर-दूर तक फैली जमीन से भीगी मिट्टी की सोंधी महक आ रही थी। नये जीवन की प्रसव-पीड़ा से भरी उस गंध ने राजन के मन में नई ताजगी भर दी। राजन ने इस लाइन पर पहले भी यात्रा की है। मगर पहले कभी ऐसे उल्लास का अनुभव नहीं हुआ है।

आसमान पर बादल एकत्र होते हुए बड़ी वर्षा की तैयारी कर रहे थे। चांदनी की शोभा कम होती जा रही थी।

खंडवा स्टेशन आया। गाड़ी यहां काफी देर रुकती है। राजन बाहर निकला। उसका दिल धड़क रहा था। अगले डिब्बे में जाकर देखने की हिम्मत उसमें नहीं थी। प्लेटफार्म के शोरगुल से बेखबर वह वहीं खड़ा था।

''लो...''

टिकट बाबू की आवाज सुनकर राजन घबराया। आगे की तरफ देखा। वह कर्मचारी

मुस्कुरा रहा था। उसके पास वह युवती भी है। राजन ने उसे आंखें खोलकर देखा तो भी कुछ खास देख नहीं सका। कुलियों, यात्रियों का शोर-शराबा उसके कानों में लहराया। राजन को लगा कि उसके पैर सुन्न हो रहे हैं।

"यही आपका आदमी है न?" वह कर्मचारी युवती से पूछता है।

"हां।" उसका जवाब था!

कर्मचारी का काम पूरा हो गया। वह इसी मुद्रा में खड़ा रहा कि अब बताइए कि क्या करें! फैसला राजन को करना है। अगर पुलिस के हवाले नहीं होना है तो नौकर का रेलभाड़ा देना होगा।

राजन जिंदगी में पहली बार ऐसे अपमान की स्थिति में पड़ा है। आरोप है कि उसने जान-बूझकर छल किया है। इसके अलावा कहीं जाती एक औरत से रिश्ता भी उस पर लादा गया है। राजन धर्मसंकट में पड़ा सोच रहा था कि क्या करे?

राजन ने अपनी झुकी नजर उठाकर उस औरत की तरफ देखा। उस दृष्टि में उसे राख हो जाना चाहिए था। आगे कभी उसमें दूसरों का अपमान करने का ख्याल नहीं उठना चाहिए। उसकी जीभ उसे फटकारने के लिए अधीर हुई।

परंतु वह उसी तरह खड़ा रह गया। उस युवती की दृष्टि की शीतलता में राजन की घृणा व क्रोध ठंडा हो गया। उसकी बड़ी-बड़ी नीली आंखें भीगी-भीगी लग रही थीं। वे मूक भाषा में उससे याचना कर रही थीं। उस युवती के विषाद-भरे भाव में अवश्य कुलीनता है। टिकट बाबू का कहना ठीक था। देखने पर यह कहने की इच्छा नहीं होगी कि वह बदचलन है।

तो फिर उस युवती में उस आदमी को—जिसे कभी नहीं देखा—अपना साथी कहने की हिम्मत कैसे आई? कहीं कोई भूल हो गई होगी। ... नहीं तो ऐसा नहीं होता ।

प्लेटफार्म का शोरगुल कम होता गया। गाड़ी कुछ मिनटों में छूटेगी। राजन को कुछ करना ही पड़ेगा। या तो यह संबंध अस्वीकारना होगा या पैसा चुकाकर अपमान अपने सिर पर वहन करना होगा।

तब भी वह युवती उसकी तरफ देख रही थी। वह कुछ बोल तो नहीं रही थी। फिर भी उस दृष्टि के पीछे हृदयस्पर्शी प्रार्थना है। वे आंसू-भरी आंखें निर्मलता की दीपशिखा-सी चमकती हैं।

टिकट बाबू जल्दी कर रहे थे।

आत्मा के झरोखे तब भी खुले थे। उसमें कौन-कौन-से आदेश प्रतिबिंबित हो रहे हैं— पीड़ा, अपमान, दु:ख और प्रार्थना।

वह मौन-भरी दृष्टि राजन के हृदय में धंस गई। घायल हरिणी की-सी दृष्टि। राजन ने मन को समझाया कि शायद भगवान परीक्षा ले रहे हैं। उसने धीरे से जेब से पर्स निकालकर खोला और नौकर का भाड़ा चुकाया। उसे उस अफसर के विजयी होने के हाव-भाव पर जरा भी ईर्ष्या नहीं हुई। वह अपनी ड्यूटी कर रहा था। शायद उसे राजन के प्रति

नफरत व शक हो। नौकर को भी ऐसा महसूस हुआ होगा। सब को शक हो, बला से—राजन को पता है कि वह क्या कर रहा है।

राजन को मन से भारी बोझ उतरता महसूस हुआ।

गाड़ी चलने लगी तो वह युवती और राजन दोनों एक ही डिब्बे में चढ़े। उसमें सिपाही के अलावा और भी कई लोग थे। खंडवा से चढ़े लोग। उनमें से किसी ने राजन को शक्की निगाह से नहीं देखा। सिपाही तब भी बटन को उंगलियों से सहला रहा था।

बेंच के एक सिरे पर थकी-सी सिर टेके बैठी उस युवती को राजन ने बाईं आंख की कोर से देखा। राजन उसकी जानकरी के बिना ही उसका अध्ययन करने लगा। वह काली बुंदकियोंवाली सफेद साड़ी पहने थी। साड़ी कई जगह फटी हुई थी। पीली चोली की भी हालत वही है। शायद मैल लगते-लगते उसका यह हाल हो गया हो। उसे नहाए बहुत दिन हो गए थे। उसके केश यही बता रहे थे। पर उस दीन-दशा में भी वह सुंदर थी।

बाहर तेज हवा चल रही थी। वह युवती खिड़की बंद करके मुड़कर बैठी तो उनकी आंखें मिलीं। युवती ने मुस्कुराने की कोशिश की। अधखुला मुंह और खिले नयन दोनों ने राजन को आकृष्ट किया। उस दृष्टि में कोई पाप नहीं था। सिर्फ कृतज्ञता थी।

"बारिश के आसार दिख रहे हैं! लगता है कि बारिश होगी।"

उनके सामने बैठे अधेड़ सज्जन ने किसी खास आदमी को लक्ष्य किए बिना ही कहा। राजन ने सिर हिलाया। बाहर वर्षा की तैयारियां हो रही थीं।

राजन को उस युवती से कुछ कहने की इच्छा हुई। पर कहां से शुरू करे? शायद वह महसूस करे कि मैं उसकी दीन दशा का बेजा फायदा उठाकर उसका शोषण कर रहा हूं।

अधेड़ आदमी खिड़की का शटर बंद करने के लिए उठा तो युवती के पैर से उसका पैर छू गया। वह एक मौका था। हिम्मत करके राजन ने पूछा—"आप कहां जाएंगी? मैं जबलपुर जा रहा हूं।"

यह सुनकर उस युवती का हृदय एकाएक उदास हो गया। परंतु वह भाव-परिवर्तन सिर्फ थोड़े क्षणों का था। उन होठों पर फीकी हंसी नजर आई।

"मैं... ? मैं... मुझे भी पता नहीं।"

इस उत्तर ने राजन की जिज्ञासा को और बढ़ाया। उत्सुकता से उसने युवती की ओर देखा। वह दृष्टि भावपूर्ण थी। उसका मतलब था कि क्या आपकी कोई मदद कर सकता हूं? वह युवती भी शायद यह भाव ताड़ गई होगी।

"आपको तकलीफ देने के लिए माफी चाहती हूं। और कोई चारा नहीं था। आपको देखने पर मुझे लगा कि आप मुझे नहीं ठुकराएंगे..."

युवती ने बात रोकी। शायद उसे लगा कि हद से ज्यादा बोल गई। मगर वह ज्यादा नहीं था। वह अधिक सुनना चाहता था।

"मेरा विचार है कि आप मुझे गलत नहीं समझेंगी।" और अधिक द्रवित होते हुए

उसने कहा—"मैं आपकी कहानी सुनना चाहता हूं।"

"ओह! मेरी कहानी—मेरी कोई खास कहानी नहीं है। मेरी कहानी इस देश में मेरे समान कई लोगों की कहानी है..."

थोड़ी देर की खामोशी के बाद उस युवती ने अपना एक बड़ा तथ्य प्रकट किया—"मैं कराची में पैदा हुई और पली थी। वहीं मेरी शिक्षा भी हुई। मगर वे सब बातें पहले की हैं। भारत-विभाजन के पहले की।"

रेलगाड़ी के पहियों की पटरियों से रगड़ने की ध्वनि उस स्त्री की दर्द-भरी आवाज में घुल गई। राजन स्तब्ध था। उसकी उम्मीदों ने उसे धोखा दिया था। राजन ने सोचा था कि वह किसी कारण से घर से भाग आई होगी। उम्र तो वही है।

बाहर तेज हवा चल रही थी। सिपाही ने अपना बक्सा और किट नीचे उतारकर रखा। उसका स्टेशन आ रहा था। राजन के नौकर की आंखें सिपाही के चमकते जूते और वर्दी पर थीं। उस डिब्बे के सब लोग खुश नजर आ रहे थे।

राजन का दिल वहां नहीं था। उसने आजाद पर्यटक के रूप में लाहौर व रावलपिंडी में जो दिन बिताए थे वे उसे याद आ रहे थे। उसने उन शहरों के लोगों के सुख-दुख में भाग लिया था। उनके साथ उनकी बहादुरी पर फख्र किया था। वे भू-भाग जब भारत से अलग किए गए तब उसकी आत्मा को चोट लगी थी। अब वह चोट हरी हो आई है और उससे खून रिस रहा है।

अपने नजदीक जीवित उस दुबली-पतली युवती को देखकर राजन को अचरज व अफसोस दोनों हुए। यह फूल पूरा खिलने से पहले ही मुरझाकर झड़ रहा है। सारी अभिलाषाओं के भग्न होने पर भी यह जीवित है। हो सकता है, वह कराची के एक नामी वकील की बेटी हो। नहीं तो किसी डाक्टर या प्रोफेसर के जीवन के अंत:पुर में एक छोटी राजकुमारी रही हो। उस समय उसने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि ऐसा भविष्य उसके सिर पर टूट पड़ेगा। शायद उसके नसीब में इस विशाल देश में भटकना लिखा हो। तेज हिलोरों में फंसी यह नाव किस किनारे लगेगी?...

सोचते-सोचते राजन की आंखों के सामने से हजारों शरणार्थी गुजरे। उनमें तरह-तरह के लोग थे। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां, बंगाली व पंजाबी। निराशा और भविष्य के विषय में अनिश्चय उसे बड़ी व्यथा देते थे। उन लोगों की लंबी कतार अविराम बढ़ रही है—किस तरफ? ...

उस समाज में राजन ने कई जाने-पहचाने चेहरे भी देखे थे। कहां? याद नहीं आ रहा है। पर देखे जरूर थे।

"गरमी तेज है, बारिश जरूर होगी..."

बोरिया-बिस्तर लिए अधेड़ यात्री उतरते हुए बोला। राजन यह सुनकर चौंक उठा—मानो एक झपकी से जगा हो। डिब्बा ज्यों का त्यों है। कुछ पुराने लोग उतरे हैं, कुछ नये लोग चढ़े हैं।

डिब्बे के दो आदमी शंका-समाधान कर रहे हैं।

"आगे?"

"जबलपुर।"

राजन को उसी स्टेशन पर उतरना था।

वह आगे भी यात्रा जारी रख सकती है। यही तो राजन से कहा था। उसे और कठिनाई व बेइज्जती झेलनी पड़ेगी। फिर भी उस मुखमंडल पर कैसा दृढ संकल्प है! क्या वह भविष्य को आशाजनक पा रही है?

राजन ने कल्पना की कि वह शताब्दियों के उस पार राजस्थान के महल के भीतर उस युवती से मिलता है। उसके ओठों से अस्पष्ट रूप से वह नाम निकला—

"पद्मिनी।"

चित्तौड़ और मेवाड़ के चित्र!

राजन लड़कपन से वीरपूजक था। शायद इसीलिए वह युवती राजन के हृदय-तारों को इतनी आसानी से झनझना सकी थी।

राजन ने जब सोचा कि अपने देश की अदम्य स्वाधीनता-कामना की एक छोटी दीप-बाती के समान वह उसके समीप उपस्थित है तब वह गर्व से पुलकित हो उठा। यही बाती भीषण ज्वालाओं का कारण जान सकती है।

हवा का जोर बढ़ता गया। उस बंद डिब्बे में असहनीय गरमी थी। तब भी किसी ने खिड़की नहीं खोली। शीघ्र ही वर्षा होने की संभावना समझकर मन में चैन महसूस हो रहा था।

वे दोनों चुप रहे। थोड़ी देर बाद राजन भी दूसरे यात्रियों के समान उतर जाएगा। उसके बाद वह युवती शायद ही मिले। राजन का फर्ज है कि उस दुखी स्त्री को ढाढ़स दे।

"मैं माफी मांगता हूं। मुझे दुःख है कि पुरानी बातों की याद दिलाई।"

यो कहते-कहते राजन की आवाज में हमदर्दी व प्यार झलक आया था।

"माफी! वह तो मुझे आपसे मांगनी चाहिए। मेरा मन जड़ हो ठिठुर गया है। मुझे पता नहीं कि लोगों से कैसा बर्ताव करना चाहिए।"

वह युवती अपना दुःख भुलाने के लिए मुस्कुराई। उस मुखमंडल पर उस समय चिंता की असंख्य रेखाएं उठ-गिर रही थीं।

राजन ने घड़ी देखी। जबलपुर पहुंचने में अब ज्यादा देर नहीं है। मगर गाड़ी कछुए की चाल से बढ़ रही है। उसे इससे खुशी ही हुई। उस अनाथ युवती से इतना जल्दी विदा लेना उसे पसंद नहीं था।

"मेरा स्टेशन आ रहा है। हम शायद आगे न मिलें। लेकिन याद हमेशा बनी रहेगी।"

राजन ने उस युवती को अपने गांव और घर का पता दिया। उस शांति के उर्वर क्षेत्र से वह कभी गुजरे तो राजन को याद करे। उसके घर वह जरूर जाए। अगर वह न हो तो उसकी मां मिलेगी।

राजन ने नारियल के बागों और खेतों से भरे अपने गांव का स्मरण किया। वहां कभी सांप्रदायिक दंगे नहीं हुए हैं। दूसरे भू-भागों में विद्वेष के बम और कटार जब चले तब उसका गांव शांति से भरा सपना देखता था। सदियों से यही स्थिति जारी है।

भविष्य के वर्ष भी उन्हें क्या एकता व ममता के बंधन से जुड़े नहीं पाएंगे? उत्तर से निकली जहरीली हवा क्या दक्खिनी दिशा में भी चलेगी?

राजन ने एकाएक पूछा—"क्या आपको भविष्य पर आस्था है?"

सवाल सुनकर वह युवती चौंकी नहीं। ऐसा लगा कि वह इस सवाल की प्रतीक्षा कर रही थी।

"हां, मैं भविष्य पर आस्था रखती हूं। इस देश के ही नहीं, पूरी मानव-जाति के भविष्य पर।"

वह आवाज कठोर नहीं थी। वे आंखें उस समय आशा की नई ज्योति से चमक रही थीं। वे भविष्य में बड़ी दूर तक यात्रा कर रहे थे।

राजन की चेतना में गुदगुदी हुई। एक आह भरकर उसने कहा—"पद्मिनी!"

"पद्मिनी!" उस युवती ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हां—इतिहास की पद्मिनी! अलाउद्दीन की..."

राजन अपना वाक्य पूरा नहीं कर सका। वह युवती बीच में बोल उठी—"दोस्त, आप से भूल हो गई। मैं जानती हूं कि आप क्या कहना चाहते हैं! शायद अनजाने ही। अगर आपने उस दंगे का स्वाद जरा भी चखा होता तो उसे दुहराना कभी न चाहते।"

राजन पसीने से तर हो गया। उसने ऐसा नहीं सोचा था। भावावेश में कह गया था। अगर उसे पहले से पता होता कि उसके शब्दों की ऐसी व्याख्या होगी तो...

उसने अपनी सफाई देने की कोशिश की—"मगर...मैं..."

"नहीं—मुझे पता है। मैंने कई अनुभव पाए हैं। उनका बाहरी स्वरूप शायद बदले हुए हों, पर सब आखिर एक ही हैं। खासकर आप जैसे पढ़े-लिखे लोग ही इसके लिए तैयार होते हैं। इस विशाल देश में आप लोग विघटन का बीज बोते हैं। आप मुझे पद्मिनी पुकारते हैं। मगर आप नहीं जानते कि लाहौर व कराची की गलियो में मेरे समान हजारों कन्याएं भटकती फिरती हैं। वे भी स्वाभिमानी हैं। बंगाल व पंजाब से गई वे बेचारी बहनें धोखा खा गई हैं। उनके बीच में जो सलीमा और आयशा हैं उन्हें आप किस नाम से पुकारेंगे? क्या पद्मिनी पुकारेंगे? अगर ऐसा है तो आपसे भूल नहीं हुई। आदमी हर जगह एक-सा होता है...।"

पानी बरसने लगा।

डिब्बे की खिड़कियां खोली गईं। गरमी एकदम दूर हो गई थी। लोगों को ठंड महसूस होने लगी।

राजन को लगा कि उस युवती की बात में सार है। आदमी सब जगह एक-सा ही होता है। मगर ऐसा सोचनेवाले कितने होंगे? बिल्कुल मुट्ठी-भर! वह युवती सांप्रदायिक

दंगों की अग्नि-ज्वाला से होकर आई है। उसे और उसके समान दूसरे सभी लोगों को यह बात अच्छी तरह मालूम है। वे आशा करते होंगे कि यह बात फिर से दुहराने न पाए।

''आपका कथन ठीक है...''

यह सुनकर उस युवती का चेहरा खुशी से खिल उठा।

''मैं सारी बातें समझा दूंगी। विभाजन के बाद सरहद से हम लोगों को भारत के सिपाहियों ने अपनी सुरक्षा में ले लिया था। क्या आप जानते हैं कि उन्होंने कैसा सलूक किया? वे सब हिंदू थे। दिल्ली की कालोनी में जानवरों को भी शरमिंदा करनेवाली बुरी वारदातें हुई हैं। मेरे पिता वहीं मरे, मेरी मां...''

उस युवती ने शब्द अचानक रोक दिए। उसकी आवाज़ कांप रही थी। वह बाहर अंधेरे की तरफ़ देखते हुए अपने आप से कह रही थी। राजन ने सुना।

''वहां सिर्फ हिंदू थे।''

राजन उसका मतलब समझ गया। दूर बिजली की बत्तियां दिखाई दे रही थीं। गाड़ी स्टेशन पर लग रही थी।

जबलपुर।

राजन भी भीड़ में अपने नौकर को साथ लेकर गाड़ी से बाहर निकला। उस समय उसने यह नहीं सोचा कि बड़ा भाई उसे लेने आया कि नहीं। उसके मन में कई विचार प्रभाती धुंध की तरह अस्पष्ट फैल रहे थे।

लोग जल्द-से-जल्द स्टेशन से बाहर निकलने के लिए अधीर थे। राजन उसी डिब्बे के सामने झिझका खड़ा था। पानी तब भी बरस रहा था। वह युवती वहीं बैठी थी। राजन क्या कहे?...

''बारिश के थमने का कोई आसार नहीं दिखता।''

युवती चिंता में डूबी थी।

वह एक जरूरत है। राह की तपी हुई धरती जलकणों से भीग उठी। तभी कल हम यहां नए जीवन की हरियाली देख पाएंगे।

गाड़ी के छूटने के बाद ही राजन स्टेशन से बाहर आया। वह कुछ नहीं देख रहा था। उस अनाथ युवती का दुख-भरा, पर आशापूर्ण मुखमंडल सामने दिखाई दे रहा है।... राजन को लगा कि उस युवती की मूर्ति धारण किए नये भारत को वह डिब्बे में छोड़ आया है।

प्लेटफार्म से बाहर आकर अंधेरे को चीरती आगे बढ़ती रेलगाड़ी को देखने पर राजन के मन को ये विचार मथ रहे थे।

उस गाड़ी की एक निश्चित मंजिल है, पर उसमें यात्रा करती स्त्री की बात?

एक किशोरी फुलझड़ी-सी

कतार में खड़े 'सरो' के पेड़ों में से एक के नीचे बैठा हूं।

मेरे सामने एक किले का खंडहर है। किला एक शिला पर बनाया गया है और शिला समुद्र की ओर झुकी है। पता नहीं, यह किला किसने बनवाया था और कब ? हो सकता है, पृथ्वी के प्रारंभ से ही यह किला यहां हो। अपनी जवानी में मुझे ऐसा लगा था। अब भी यही महसूस हो रहा है।

जिस दिन से होश आया तब से मैं घुमक्कड़ रहा हूं। अनुभवों की उतरन का बोझ कंधे पर लादे जिंदगी की दुर्गम राहों पर यात्रा करता रहा हूं। कितने ही देश देखे। कितने ही लोगों से हिला-मिला। मगर क्या बेचैन मन को राहत मिली ?

नहीं!

तथापि जब कभी इस पुराने नगर में वापस आता हूं तब मुझे एक अवर्णनीय शांति मिलती है। यह शहर मेरी मां है जिससे मैं सदियों पहले बिछड़ा हूं। मुझे लगता है कि यहां की तंग गलियां, बड़ा मैदान, मंदिर-मस्जिद, सब से बढ़कर यह ढहा पुराना किला—सब मेरे अपने हैं।

यहां की चप्पा-चप्पा जमीन—रेत का कण-कण मेरे लिए सिजा गया है।

यहीं पर एक वर्ष पहले मैं एक नया आदमी बना था।

अस्ताचल की ओर बढ़ते सूरज की किरणें सरोवृक्ष की झुकी डालियों से छनकर आ रही थीं। लोग समुद्रतट से लौट रहे थे। बहुत कम लोग वहां रह गए थे। जितने भी थे, उनमें बुजुर्गों की संख्या अधिक थी। वे सर्दी पड़ने से पहले घर पहुंचने की उतावली में चल रहे थे।

गले पर गुलूबंद बांधे बुजुर्ग बड़ी बेंत की छड़ी घुमाते हुए मुझे पार कर गए। जवानों को कोई जल्दी नहीं थी। वे हाथ में हाथ लिए, एक-दूसरे से चिपके धीमी चाल से चल रहे थे। मुझे लगा—वे इसी की चिंता कर रहे थे कि अंधेरा क्यों जल्दी नहीं फैलता ?

उन लोगों में से किसी ने मुझ पर ध्यान नहीं दिया।

मगर मैं तो उन पर ध्यान दे रहा था।'

कुछ दिन पहले की बात होती तो मैं उनसे ईर्ष्या करता। आह भरकर बोल उठता—

'सिर्फ मौज मनाने के लिए जन्मे हुए खुशनसीब।'

'मौज!'

मुझे हंसी आ रही है।

इसका कारण है। मुझे मालूम है कि उनमें ज्यादातर लोग खुशी मना नहीं सकते। वे कोई नकली आवरण ओढ़े हुए कहीं बहते जा रहे हैं। आत्म-प्रवंचना की किस वैतरणी की

ओर? वे किसी से अपना संबंध नहीं जोड़ते। वे संबंध जोड़ ही नहीं सकते हैं।

मैंने मानव के जटिल संबंधों के बारे में सोचा। पहले भी कई बार सोचा है। फिर भी मैंने समझा नहीं कि वे ऐसी गुत्थियां हैं जिन्हें खोलना संभव नहीं।

'लेकिन क्या आज मैं समझ गया?' मैंने खुद सवाल किया।

क्या मैं अपनी गुत्थियां खुद खोल सका?

दिल का पुराना घाव फिर से हरा हो गया। खून रिसने लगा। मेरा मन बेचैन हो रहा है।

तभी वह ध्वनि सुनाई पड़ी। कोई हंसी का ठहाका लगा रहा है। मैंने मुड़कर देखा।

वह किशोरी फुलझड़ी-सी प्रकाश फैला रही थी। मुझे ताज्जुब नहीं हुआ। मैं हमेशा हर जगह उसकी राह देखता हूं। मेरे अंधकारमय जीवन में वह उल्का की तरह एकाएक आई और चौंधियाकर अदृश्य हो गई। वह अविस्मरणीय स्मृति बनकर रह गई।

वह ऐसी याद रह गई जो भुलाए नहीं भूलती।

मैं अपनी आत्मा में ही उसे फिर से देख रहा हूं।

मेरा अंग-अंग फड़क उठा। उस किशोरी के साथ उसकी छोटी बहन और छोटा भाई थे। दोनों को लेकर वह फुटपाथ से चली आ रही थी। उसने लहंगे के ऊपर इंद्रधनुषी रंग की जार्जेट की चुनरी-सी ओढ़ रखी थी। वह कुछ बड़ी हो गई है। वह लड़का टिन का खिलौना अंगुलियों से घुमा रहा था जिससे आवाज निकल रही थी।

वह कुछ कहकर जोर से हंस पड़ी। कोई मजाक की बात होगी। उनकी दुनिया में सिर्फ हंसी-मजाक के लिए ही जगह है।

जब वे मुझे पार कर गए तब उस किशोरी को मैंने अच्छी तरह देखा। उसका मुखमंडल निर्मलता का दर्पण था। वह ऐसा ही रहेगा।

मैंने सोचा कि सांझ के झुटपुटे में पेड़ के नीचे पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे मुझे देख वह भयभीत हो जाएगी। मेरा पक्का विश्वास था कि वह मुझे देखेगी। कोई खास कारण नहीं। वह मुझे देखेगी, बस!

मैं इंतजार कर रहा था।

मेरी प्रतीक्षा सही निकली। उसने मेरी ओर देखा। भयभीत होने के बदले वह किशोरी मुस्कुराई। वह डरी नहीं। क्यों डरे? क्या मैं आदमी नहीं हूं। परंतु...कितने लोग यह पहचानते हैं?

सहज ही सुंदर वह मुखमंडल अब और मनोहारी हो आया। न जाने क्यों, मेरी आंखों में आंसू भर आए। अतिशय आनंद के कारण हो सकता है।

क्या उसने मुझे पहचाना? कौन जाने?

आंखों से जब तक वह ओझल न हुई तब तक मैं उसे देखता ही रहा।

सरो पेड़ की टहनियों से होकर सीटी बजाती हवा और किले की चट्टान से टकराती तरंग उस किशोरी की खिलखिलाहट को दुहराती-सी लगीं।

सांझ की लाली पूरी तरह मिट गई और आसमान के कोने में दो-चार तारे चमक उठे। मैं यहां से नहीं उठा। मैं इस पेड़ के नीचे हिमाच्छादित पर्वत की उपत्यका में ध्यान-लीन योगी की तरह बैठा रहा। सीलन-भरा वातावरण, अंधेरा, सर्वत्र फैली हुई नीरवता! सागर भी जरा शांत हो गया है।

उस किशोरी से पहले-पहल मिलने का दिन स्मरण हो आया।

एक गूढ़ ध्येय हृदय में छिपा मैं यहां की गलियों में भटक रहा था। मुझे प्यार करने वाले कुछ लोगों से मैं बड़े सवेरे ही जाकर मिला। मैंने किसी भी तरह की पूर्व-सूचना उन्हें नहीं दी थी। लगता है कि मेरे व्यवहार ने उन्हें चौंका दिया था। उनके पूछने पर मैंने कहा—''यों ही मिलने आया। शायद फिर से इधर शीघ्र आने की संभावना नहीं है।''

मेरी आवाज पथरा गई होगी। फिर भी मेरी कही बात पर उन्होंने विश्वास किया। वे जानते हैं कि मैं कहीं स्थायी रूप से नहीं रहा करता।

पुराने रास्ते से ही फिर से चला। मंदिर व मस्जिद को पार किया। मैदान में थोड़ी देर बैठा रहा। वहां से उठकर फिर से घूमने लगा। कोई कोना नहीं छोड़ा। हर जगह गया।

आखिर थिएटर के सामने पहुंचा। वहां थोड़ी देर यों ही खड़ा रहा तो सोचा—'क्यों नए सिनेमा देखा जाय?' वैसे मुझे सिनेमा हमेशा प्रिय रहा है। सिनेमा की ही बात क्यों कहूं? संसार की सारी बातें मुझे प्रिय थीं।

शाम तक शो खत्म हो जाएगा। उसके बाद काफी समय है। कहीं भी जा सकता हूं। जेब में पैसे हैं। होटल में कमरा लेने में कोई कठिनाई नहीं है। चाहूं तो अपने निवास भी लौट सकता हूं। वहां अपने बिस्तर पर आराम से लेटने के बाद...

मैंने जहर पीकर मरने का निश्चय कर लिया था।

मैं कैसे ऐसे निश्चय पर पहुंचा? इस संबंध में कुछ बता नहीं सकता। मेरे जीवन का बीता हर क्षण गहरे विषाद और निराशा से भरा था। मेरा यकीन था कि जिस किसी से मिलता हूं वह मुझे तबाह करने की ताक में बैठा है। इसलिए मैं सबसे नफरत करता व डरता था। मेरे दिल में संदेह की मशाल जल रही थी।

फिर भी कुछ लोगों को मैं सब कुछ भूलकर प्यार करता रहा।

वे भी मुझे पहचान नहीं सके। जीवन मेरे लिए असाध्य हो गया।

मेरा बचपन आनंदपूर्ण स्वप्न-सा बीता था।

सांस की घुटन उन्हीं दिनों शुरू हुई। आखिर जब हद हो गई तब तय किया कि खुदकुशी करूंगा। मौत के साथ कौन-सा दर्द खत्म नहीं होता?

उस दिन जेब में जहर की शीशी लिए थिएटर में जा बैठा तो अपने से कहा—'मरना चाहिए।' तभी सुख और स्वाधीनता प्राप्त होगी।

सबसे पीछे की कतार में मैं बैठ गया। मैटिनी में लोग बहुत कम थे। मैं खुश हुआ कि बिना झंझट के फिल्म देख सकूंगा।

6' जब फिल्म शुरू हो रही थी तब एक किशोरी और उसके पीछे दो छोटे बच्चे थिएटर

के अंदर आ गए। वे बड़ा शोर मचाते हुए आए। लड़कों में जो घबराहट हुआ करती है वह उनमें नहीं थी।

उस किशोरी ने कोई गाना गुनगुनाते हुए पूरे थिएटर पर लापरहवाही से नजर डाली।

मैं उस समय मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था—'हे भगवान! उन बच्चों को मेरे पास न भेजना। इन अंतिम क्षणों में मेरे मन में जो शांति है उसे वे नष्ट करेंगे। इस थिएटर में कितनी ही जगह खाली है! कहीं भी बैठें। सिर्फ यहां न आएं।'

मैं प्रार्थना कर ही रहा था कि वह बालिका मेरे पास आकर बैठ गई। साथ में दो बच्चे भी।

मैंने उनकी तरफ बिल्कुल नजर नहीं डाली।

अगर मुझे तंग नहीं करना था तो वे मेरे पास ही क्यों आए?

वह किशोरी अपनी छोटी बहन और छोटे भाई से तमिल व मलयालम की मिश्रित भाषा में बतियाने लगी। बड़ी तेज रफ्तार से। बातचीत के बीच वह किसी-किसी गाने की कड़ी सुनाने में अपनी कुशलता भी दिखा रही थी। बीच-बीच में वह खिलखिला उठती, जैसे पहाड़ी नदी चट्टान से टकराकर छितरा पड़ती है।

खेल शुरू हुआ।

टेक्सास के विशाल घास के मैदान पर दो जवान मजनू अपनी युवती के लिए खून बहाने को तैयार खड़े हैं।

बंदूक से गोली निकलती है। आदमी छटपटाकर गिरता है। घोड़े सरपट दौड़ते हैं। दुश्मन हजारों गायों को हांक ले जाते हैं।

मेरी बगल में बैठी वह किशोरी भी उस समय टेक्सास की एक गोशाला में थी। वह बेहद बेकरार दिखाई पड़ी। एक घोड़ा जब तड़पकर गिर पड़ा तब वह हार्दिक दुख से बोल उठी—"हाय बेचारा!"

डेविड का बीभत्स मुखमंडल क्लोज अप में देखा तो वह बोल उठी— "छि: !"

कहती हुई वह अपनी कुर्सी के पीछे की ओर खिसकी।

किसी बदमाश के हाथ में गोली लगी तो वह बालिका मेरा हाथ झटकाते हुए बोली—"शाबाश! ऐसा ही होना चाहिए। है न?"

मैं कोई आवेग दिखाए बिना पर्दे पर ही आंख गड़ाए रहा।

मुझे आश्चर्य हुआ। यह किशोरी उत्साह की चिनगारी है!

उस बालिका के प्रति मेरे मन में जो चिढ़ थी वह धीरे-धीरे दूर हो गई।

उसने मेरा हाथ खींचकर पूछा—"क्या आप मुझे इसकी कहानी सुना देंगे?"

मैंने उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखा। उसकी नाक की गुलफी के हीरे की तरह उसका चेहरा भी जगमगा रहा है।

"बोलिए! क्या नहीं बताएंगे? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। मैं इस वर्ष छठे दर्जे में ही आई हूं।"

तब मेरे मन में कितनी खुशी हुई ! पहली बार एक लड़की इतने प्यार और आजादी से मुझसे एक चीज मांग रही थी। मेरा कुर्ता सस्ता व फटा था। मेरे बाल संवरे नहीं थे। दाढ़ी नहीं बनाई थी। फिर भी उस लड़की को लगा कि मैं एक अंग्रेजी फिल्म की कहानी उसे बता सकता हूं।

एक बार मैं मां के साथ अस्पताल गया तो एक नर्स ने पूछा—''बेटा है न?''

मां ने कहा—''जी हां।''

''बीड़ी का काम करता होगा न?''

मां के कुछ कहने से पहले ही मैंने बताया—''हां।''

परंतु वह नर्स बुजुर्ग थी।

मेरी बगल में जो मेरी लियाकत पर विश्वास रखती है वह एक छोटी किशोरी है। वह ऐसी दुनिया में जीवन बिताती है जिसमें हमेशा सूरज का प्रकाश फैला रहता है और फैली रहती है गुलाब के फूल की खुशबू। उसमें ऐसा कोई कोना नहीं जो अंधेरा और कांटों से भरा हो ...!

आधा खेल जब खत्म हुआ तब उसने मुझे सुनाने के लिए एक प्यारा गाना गाया। उसकी एक पंक्ति यों थी—

''चंदा रे जा रे जा रे!''

मैंने जब कहा कि गाना बहुत अच्छा रहा तब उसने कहा—''मेरे पिता को भी गाना बहुत पसंद है।''

छोटे भाई की जेब से उसने चाकलेट का एक पैकेट लेकर खोला—एक मुझे भी दिया।

जब मैंने सोचा कि मरने की तैयारी करनेवाले मुझ जैसे नाचीज को यह लड़की चाकलेट दे रही है तब अपनी हंसी को रोक नहीं सका।

मैंने कहा—''नहीं, बच्ची, मुझे नहीं चाहिए।''

वह नहीं मानी।

''क्यों? क्या आप चाकलेट नहीं खाएंगे? क्या आपको पसंद नहीं? मुझे पसंद है। मां मुझे हमेशा चाकलेट देती है। क्या आपकी मां आपको चाकलेट देती हैं?''

पूछती है—मेरी मां क्या मुझे चाकलेट देती है? शायद उसने सोचा होगा कि मैं एक बालक हूं।

उसकी जिद मानकर मैंने चाकलेट खा लिया।

खेल खत्म हुआ तो उसने कहा—''अभी खत्म नहीं होता तो अच्छा रहता!''

हम बाहर निकले। सूर्यास्त का समय हो रहा था।

उसने पूछा—''आप आगे कब फिल्म देखने आएंगे?''

मैं कुछ नहीं बोला।

''क्या अगले हफ्ते आएंगे? क्या आ नहीं सकेंगे?''

मुझे मजाक सूझा। मैंने कहा—"मां के अनुमति देने पर आऊंगा।"

वह खिलखिला उठी— "मां से कहना कि मैं भी आ रही हूं।"

मैं हंस नही सका।

उसकी छोटी बहन और छोटा भाई जल्दी कर रहे थे।

मुझे उस किशोरी से विदा होने पर दुःख हुआ।

वह बोली—"मैं इंतजार करूंगी।"

मैंने यों ही हामी भरी—"अच्छा।"

"चीरियो!"

"गुडबाई!"

वह बच्चों को साथ लेकर चली गई।

मैं उसी को अपलक देखता खड़ा रहा। मैंने देखा—वह बड़ी हो गई है। उसका ब्याह हो गया है।

मेरे मन में टीस उठी। मैं अकेला हूं। दुःखी हूं। परंतु दूसरे क्षण मैंने सोचा—वह बालिका स्वयं खुश रहना और दूसरों को खुश रखना चाहती है।

मैं अकेले घर चला। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि अंधेरी कोठरी में घंटों तक सांस की घुटन झेलते पड़े रहने के बाद एक खुले मैदान में पहुंचा हूं। अनजाने ही मेरे मन में एक परिवर्तन हो रहा था।

उस रात मैंने जहर पीकर प्राण नहीं त्यागे।

उसके बाद पूरा साल बीता है। मैं फिर से पहले की तरह आवारा दर-दर भटकता हूं। अब मैं यह जानना नहीं चाहता कि दूसरे लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं। वे जो चाहे कहें, परवाह नहीं।

बीती बातें धुंधली ही दिखाई देती हैं। इसलिए तर्क की कोई तुक नहीं। एक ही राहत है—

मानव-जवीन में कई ऐसी घटनाएं होती हैं जिनको तर्क से समझा नहीं जा सकता।

कुहरा खूब घना छा रहा है। मैं जा रहा हूं।

उस फुलझड़ी-सी किशोरी से फिर मुलाकात अवश्य होगी। हो सकता है—चार या पांच सौ वर्ष इस बीच बीत जाएं। सारे आदमी, जिनमें मैं भी शामिल हूं, एक दोराहे पर शंकित खड़े होंगे। उसी घड़ी में ... तुम, मत जाइयो!

दि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ए-12/1 नरायणा इन्डस्ट्रियल एरिया-I, नई दिल्ली 110028 द्वारा मुद्रित